श्रीरामरत्न-पुस्तक-माला—तृतीय पुष्प

पद्माकर कृत

जगद्विनोद

11 AP

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र बी. ए.
साहित्यरत्न

70877

हिन्दी

बसंतपंचमी, १९९१ सं०

प्रकाशक
श्रीरामरत्न-पुस्तक-भवन
काशी

प्रथमावृत्ति
मूल्य १)

मुद्रक
बजरंगबली 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी ।

प्रस्तावना

पद्माकर का 'जगद्विनोद' है तो नायिका-भेद का ही ग्रंथ, किंतु मोटे रूप से इसमें पूरे रस-चक्र का निरूपण है। इस ग्रंथ का मान रसिक-समाज और विशेषतः रस-जिज्ञासुओं के बीच विशेष है, क्योंकि इसके लक्षण और उदाहरण इसी ढंग के अन्य ग्रंथों की अपेक्षा बहुत साफ हैं। कहीं-कहीं जो त्रुटि दिखाई देती है उसका मुख्य कारण बहुत-कुछ लक्षणों का पद्यबद्ध होना भी है। जो लोग हिंदी के प्राचीन लक्षण-ग्रंथों की परख संस्कृत की शास्त्रीय तर्कपद्धति का मानदंड लेकर करते हैं उन्हें ऐसे ग्रंथों में यत्र-तत्र कुछ दोष मिल जायँ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पद्माकर ने संस्कृत का अच्छा अध्ययन करके अपने ग्रंथ प्रस्तुत किए हैं, इसका पता जगह-जगह मिलता है। निरूपण में जहाँ-कहीं विभेद मिलता है उसका कारण हिंदी की परंपरा भी है, जिसे पद्माकर त्याग ही कैसे सकते थे। जिन्हें पद्माकर में इस प्रकार के दोष दिखाई पड़े हैं, उनकी समझ का फेर भी वहाँ कारण है। हिंदी की अभिव्यंजन-शैली की अनभिज्ञता ने भी उन्हें थोड़ा-बहुत धोखा दे ही डाला है। उदाहरण के लिये छंद-संख्या ५५ को ही ले लीजिए। कुछ आलोचक यहाँ 'नायक' को उपस्थित नहीं मानते, क्योंकि 'पीतम के संग' शब्द उसकी

उपस्थित के बाधक हैं। पर बात ऐसी नहीं है। नायक वहाँ उपस्थित है। नायिका कह तो रही है अपनी सखी से पर सुना रही है 'पीतम' को ही। उसका क्रोध व्यंग्य है। यही पद्माकर का लक्षण भी कहता है—'कोप जनावै ब्यंग सों'।

पद्माकर ने जितने उदाहरण दिए हैं उनमें से कुछ को छोड़कर सभी उनकी मौलिक सूझ हैं। पाँच-छः का संस्कृत से उन्होंने अनुवाद भी किया है। पद्माकर की जितनी रचनाएँ प्राप्त हैं उनमें सबसे उत्तम 'जगद्विनोद' ही माना जाता है। कवित्व, अभिव्यंजन-शैली तथा भाषा सभी दृष्टियों से यह अच्छा बन पड़ा है। पद्माकर पर अनुप्रास के अनुराग का जो दोष मढ़ा जाता है वह भी समीचीन नहीं जान पड़ता। वर्ण-मैत्री का स्वाभाविक विधान साहित्य-शास्त्रियों ने विहित ही बतलाया है। दो-चार स्थलों पर वर्णन-सामग्री की स्फुट योजना करते समय अनुप्रास का प्रयोगाधिक्य जान-बूझकर किया गया है। क्योंकि जहाँ किसी भाव का निरूपण न हो, वहाँ थोथा वर्णन चमत्कार के विना प्रस्तुत करना रीतिकाल के कवियों की प्रवृत्ति के विरुद्ध रहा है। इसलिये पद्माकर की उक्त प्रवृत्ति को परंपरामुक्त भी समझना चाहिए। विद्वन्मंडली में पद्माकर की भाषा सफाई, लोच, बंदिश और धारा के लिये प्रसिद्ध रही है, अनुप्रास के लिये तो कुछ गिने-गिनाए छंद सभा-समाजों में चमत्कार दिखाने के लिये केवल पठंतवाले ही याद करते रहे हैं।

पद्माकर के भाव और भाषा की नकल उनके परवर्ती कवियों में से बहुतों ने की है, जिनमें से ग्वाल, द्विजदेव, लछिराम ऐसे प्रसिद्ध कवि भी हैं। यद्यपि 'रत्नाकर' जी में 'बिहारी' की भाषा

का अनुगमन अधिक देखने को मिलता है, तथापि पद्माकर की भाषा का प्रभाव भी उनपर कम नहीं है। कहना यों चाहिए कि उन्होंने 'गठन' तो बिहारी के ढंग की रखी है, पर सफाई और लोच पद्माकर की सी। सच पूछा जाय तो पद्माकर के ऐसी उतार-चढ़ाववाली इठलाती भाषा लिखनेवाले हिंदी में कम कवि मिलेंगे। रहा भाव। पद्माकर के इस ग्रंथ में अधिकांश भाव मौलिक ही पाए जाते हैं। जो लोग दो कवियों में एक-से दो-चार शब्द देखकर या एक-से मुहावरे पाकर परवर्ती कवि को पूर्ववर्ती के भावों का चुरानेवाला कह बैठते हैं उनकी समझ की दवा ही क्या है? हाँ, इस बात को स्वीकार कर लेने में आगा-पीछा करने की जगह अवश्य नहीं है कि पद्माकर में भाव-व्यंजना बहुत ऊँचे दर्जे की नहीं है। बात यह है कि स्फुट रचना में वही कवि सबसे अधिक समर्थ हो सकता है जो पेचीले प्रसंगों की ऊहा करने में बढ़ा-चढ़ा हो, जैसे बिहारी। पद्माकर ने ऐसे प्रसंगों की ऊहा कम की है, उनके प्रसंग सीधे ही हैं। उनकी भाव-व्यंजना इसलिये भी स्वभावतः कुछ दबती-सी जान पड़ती है। पर जहाँ उन्हें भावों का या बाह्य स्वरूप का चित्रण करने का अवसर मिला है, वहाँ उन्होंने पूरी प्रवणता दिखाई है। विशेषतः उनके चित्र-निरूपण बहुत साफ उतरे हैं।

× × × ×

इसके संपादन में एकीकरण के विचार से कुछ शीर्षकों की योजना रचयिता की रीति के अनुकूल संपादक की ओर से की गई है, क्योंकि कवि की गृहीत प्रणाली के अनुसार वैसा न करने से व्यतिक्रम पड़ता था। भाषा में भी समन्वय स्थापित

करने की दृष्टि से विभक्तियों और शब्दों के रूपों में कहीं-कहीं छपी प्रतियों से थोड़ा-सा अंतर मिलेगा। पर विभक्तियों आदि के रूप स्थिर करने में 'रत्नाकरी' अथवा 'मथुरिया' पद्धति नहीं पकड़ी गई है, क्योंकि एक तो पद्माकर की ही पहली और पिछली रचनाओं में स्वरूपों का अंतर साफ लक्षित होता है, दूसरे बिहारी आदि पुराने कवियों के बाद से स्वरूपों में कुछ परिवर्तन भी हो चला था, क्योंकि भाषा ने सामान्य-काव्य-भाषा का रूप पकड़ लिया था। इसलिये पुराने कवियों के ढाँचे पर उलट-फेर करना अथवा व्रज के ठेठ उच्चारण के स्वरूप की नकल करना दोनों ही अभीष्ट नहीं समझा गया।

इधर बहुत दिनों से 'जगद्विनोद' के किसी संस्करण के प्राप्य न होने से विद्यार्थियों को विशेष कठिनाई पड़ती थी। इसी उद्देश्य से 'श्रीरामरत्न-पुस्तक-माला' के तृतीय पुष्प के रूप में यह संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिये पुस्तक के अंत में विस्तृत टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। सरल शब्दों का भी अर्थ देने का कारण यह है कि परदेशी विद्यार्थियों को स्थान-स्थान पर अटकना पड़ता है, जिसका अनुभव संपादक को इधर कुछ दिनों से हो रहा है। अंत में हम सहृदय साहित्य-सेवियों की सेवा में त्रुटियों और धृष्टता के लिये विनम्र भाव से क्षमा माँगते हैं और आशा करते हैं कि वे मधुकर-वृत्ति से इसका रस लेकर भूलों को सूचित करते हुए आभारी बनाने की अनुकंपा करेंगे।

वसतपंचमी, १९९१
ब्रह्मनाल, काशी } **विश्वनाथप्रसाद मिश्र**

जगद्विनोद

जगद्विनोद

मंगलाचरण

(दोहा)

सिद्धि-सदन सुंदर बदन, नँद-नंदन मुद-मूल ।
रसिक-सिरोमनि साँवरे, सदा रहौ अनुकूल ॥१॥
जय जय सक्ति सिलामई, जय जय गढ़ आमेर ।
जय जय पुर सुरपुर-सदृस, जो जाहिर चहुँ फेर ॥२॥
जय जग-जाहिर जगत-पति, जगतसिंह नरनाह ।
श्रीप्रताप-नंदन बली, रबिबंसी कछवाह ॥३॥
जगतसिंह नरनाह कों, समुझि सबन को ईस ।
कबि 'पद्माकर' देत है, कवित बनाइ असीस ॥४॥

(कवित्त)

छत्रिन के छत्र छत्रधारिन के छत्रपति,
छाजत छटानि छिति छेम के छवैया हौ ।

कहै 'पद्माकर' प्रभाव के प्रभाकर,
दया के दरियाव हिंद-हद्द के रखैया हौ ॥
जागते जगतसिंह साहेब सवाई,
श्रीप्रताप-नृप-नंद-कुलचंद रघुरैया हौ ।
आछे रहौ राजराज राजन के महाराज,
कच्छ-कुल-कलस हमारे तौ कन्हैया हौ ॥५॥
आप जगदीस्वर है जग में बिराजमान,
हौं हूँ तो कबीस्वर ह्वै राजतै रहत हौं ।
कहै 'पद्माकर' ज्यों जोरत सुजस आप,
हौं हूँ त्यों तिहारो जस जोरि उमहत हौं ॥
श्रीजगतसिंह महाराज मान सिहावत,
बात यह साँची कछू काँची ना कहत हौं ।
आप ज्यों चहत मेरी कविता दराज,
त्यों मैं उमिरि दराज राज! रावरी चहत हौं ॥६॥

(दोहा)

जगतसिंह नृप जगत-हित, हरष हिये निधि नेहु ।
कवि 'पद्माकर' सों कह्यो, सरस ग्रंथ रचि देहु ॥७॥
जगतसिंह-नृप-हुकुम तें, पाइ महा मन-मोद ।
'पद्माकर' जाहिर करत, जग-हित जगतबिनोद ॥८॥
नवरस में श्रृंगार - रस, सिरे कहत सब कोइ ।
सु रस नायिका-नायकहिं, आलंबित ह्वै होइ ॥९॥
ता में प्रथमहि, नायिका-नायक कहत बनाइ ।
जुगति जथामति आपनी, सुकबिन कों सिर नाइ ॥१०॥

अथ नायिका-निरूपण

नायिका को लक्षण

रस-सिँगार को भाव उर, उपजत जाहि निहारि ।
ताही कों कबि नायिका, बरनत बिबिध बिचारि ॥११॥

नायिका को उदाहरण—(कवित्त)

सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंग-रंग,
अंग-अंग फैलत तरंग परिमल के ।
बारन के भार सुकुमारि को लचत लंक,
राजै परजंक पर भीतर महल के ॥
कहै 'पद्माकर' बिलोकि जन रीझैं जाहि,
अंबर अमल के सकल जल-थल के ।
कोमल कमल के गुलाबन के दल के,
सु जात गड़ि पायनि बिछौना मखमल के ॥१२।

पुनर्यथा—(सवैया)

जाहिरै जागति-सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी ।
त्यों 'पद्माकर' हीर के हारनि गंग-तरंगन कों सुखदेनी ॥
पायन के रँग सों रँगि जाति-सी भाँति-ही-भाँति सरस्वति-सेनी ।
पैरै जहाँई-जहाँ वह बाल तहाँ-तहाँ ताल में होति त्रिबेनी ॥१३॥

पुनर्यथा—(कवित्त)

आई खेलि होरी घरै नवलकिसोरी कहूँ,
बोरी गई रंग में सुगंधनि झकोरै है ।
कहै 'पद्माकर' इकंत चलि चौकी चढ़ि,
हारन के बारन तें फंद-बंद छोरै है ॥
घाँघरे की घूमनि सु ऊरुन दुबीचे दाबि,
आँगी हू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है ।

दंतनि अधर दाबि दूनरि भई-सी चापि,
चौवर - पचौवर कै चूनरि निचोरै है ॥१४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सहज सहेलिन सों जु तिय, बिहँसि-बिहँसि बतराति ।
सरद-चंद की चाँदनी, मंद परति-सी जाति ॥१५॥

त्रिविध नायिका

कही त्रिबिध सो नायिका, प्रथम स्वकीया नाम ।
पुनि परकीया दूसरी, गनिका तीजी बाम ॥१६॥

स्वकीया को लक्षण

निज पति ही के प्रेममय, जा को मन बच काय ।
कहत स्वकीया ताहि सों, लज्जासील सुभाय ॥१७॥

स्वकीया को उदाहरण—(कवित्त)

सोभित स्वकीया-गन-गुन-गनती में तहाँ,
तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है ।
कहै 'पद्माकर' पगी यों पति-प्रेम ही में,
पदुमिनि तो-सी तिया तू ही पेखियतु है ॥
सुबरन-रूप जैसो तैसो सील-सौरभ है,
याही तें तिहारो तन धन्य लेखियतु है ।
सोने में सुगंध न सुगंध में सुन्यो री सोनो,
सोनो औ सुगंध तो में दोनों देखियतु है ॥१८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

खान-पान पीछू करति, सोवति पिछिले छोर ।
प्रान-पियारे तें प्रथम, जगति भावती भोर ॥१९॥

स्वकीया की अवस्था

एक स्वकीया की कही, कबिन अवस्था तीनि ।
मुग्धा इक, मध्या बहुरि, पुनि प्रौढ़ा परबीनि ॥२०॥

मुग्धा को लक्षण

झलकति आवै तरुनई, नई जासु अँग-अंग ।
मुग्धा ता सों कहत हैं, जे प्रबीन रस-रंग ॥२१॥

मुग्धा को उदाहरण—(सवैया)

ये अलि या बलि के अधरान में आनि चढ़ी कछु माधुरई-सी ।
ज्यों 'पद्माकर' माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई-सी ॥
ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कछु ज्यों ही नितंब त्यों चातुरई-सी ।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किहि धौं कटि बीच ही लूटि लई-सी ॥२२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कछु गज-गति के आहटनि, छिन-छिन छीजत सेर ।
बिधु-बिकास बिकसत कमल, कछू दिनन के फेर ॥२३॥
पल-पल पर पलटन लगे, जाके अंग अनूप ।
ऐसी इक ब्रजबाल को, को कहि सकत सरूप ॥२४॥
यह अनुमान प्रमानियतु, तिय-तन-यौवन-जोति ।
ज्यों मेहँदी के पात में, अलख ललाई होति ॥२५॥

मुग्धा के भेद

मुग्धा द्विविध बखानहीं, प्रथम कही अज्ञात ।
ज्ञातयौबना दूसरी, भाषत मति-अवदात ॥२६॥

अज्ञातयौवना को लक्षण

जब यौबन को आगमन, जानि परत नहिं जाहि ।
सो अज्ञातयौबन तिया, भाषत सुकबि सराहि ॥२७॥

अज्ञातयौवना को उदाहरण—(कवित्त)

ये अलि हमैं तौ बात गात की न जानि परै,
बूझति न काहे या में कौन कठिनाई है ?

कहै 'पद्माकर' क्यों अंग न समाति आँगी ?,
लागी काह तोहि ?, जागी उर में उचाई है ॥
तौऽब तजि पायनि चली है चंचलाई किते ?,
बावरी बिलोके क्यों न आँखिन में आई है ।
मेरी कटि मेरी भटू कौन धौं चुराई ?,
तेरे कुचनि चुराई, कै नितंबनि चुराई है ॥२८॥

पुनर्यथा—(सवैया)

खेद को भेद न कोऊ कहै व्रत आँखिन हूँ अँसुवान को धारो ।
त्यों 'पद्माकर' देखती हो तनको तन-कंप न जात सँभारो ॥
ह्वै धौं कहा को कहा गयो यों दिन द्वैक ही तें कछु ख्याल हमारो ।
कानन में बसी बाँसुरी की धुनि प्रानन में बस्यो बाँसुरीवारो ॥२९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

काह कहौं दुख कौन सों, मौन गहौं किहि भाँति ।
घरी-घरी यह घाँघरी, परति ढीलियै जाति ॥३०॥
उर उकसौहैं उरज लखि, धरति क्यों न धनि धीर ।
इनहिं बिलोकि बिलोकियतु, सौतिन के उर पीर ॥३१॥

ज्ञातयौवना को लक्षण

तन में यौवन-आगमन, जाहिर जब जिहि होत ।
ज्ञातयौवना नायिका, ताहि कहत कवि-गोत ॥३२॥

ज्ञातयौवना को उदाहरण—(सवैया)

चौक में चौकी जराय-जरी तिहि पै खरी बार बगारति सौंधे ।
छोरि धरी हरी कंचुकी न्हान कों अंगन तें जगे जोति के कौंधे ॥
आई उरोजन की छवि यों 'पद्माकर' देखत ही चकचौंधे ।
भाजि गई लरिकाई मनो लरि कै करि कै दुहुँ दुंदुभि औंधे ॥३३॥

पुनर्यथा—

ये वृषभानकिसोरी भई इतै ह्वाँ वह नंदकिसोर कहावै ।
त्यों 'पद्माकर' दोउन पै नवरंग तरंग अनंग की छावै ॥
दौरैं दुहूँ दुरि देखिबे कों दुति देह दुहूँ की दुहून कों भावै ।
ह्याँ इन के रसभीने बड़े दृग ह्वाँ उनके मसि भीजति आवै ॥३४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

आज-कालि दिन द्वैक तें, भई और ही भाँति ।
उरज उचौहनि दै उरू, तन तकि तिया अन्हाति ॥३५॥

नवोढ़ा को लक्षण

अति डर तें अति लाज तें, जो न चहै रति बाम ।
तेहि मुग्धा को कहत हैं, सुकबि नवोढ़ा नाम ॥३६॥

नवोढ़ा को उदाहरण—(सवैया)

राजि रही उलहीं छबि सों दुलही दुरि देखत ही फुलवारी ।
त्यों 'पद्माकर' बोलै हँसै हुलसै बिलसै मुखचंद-उज्यारी ॥
ऐसे समै कहुँ चातक की धुनि कान परी डरपी वह प्यारी ॥
चौंकि चकी चमकी चित में चुप ह्वै रही चंचल अंचलवारी ॥३७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तिय देख्यो पिय स्वप्न में, गहत आपनी बाँह ।
नहीं-नहीं कहि जगि भजी, जदपि नहीं ढिग नाँह ॥३८॥

विश्रब्ध-नवोढ़ा को लक्षण

पति की कछु परतीति, उर धरै नवोढ़ा नारि ।
सो विश्रब्धनवोढ़ तिय, बरनत बिबुध बिचारि ॥३९॥

विश्रब्ध-नवोढ़ा को उदाहरण—(सवैया)

जाहि न चाह कहूँ रति की सु कछू पति कों पतियान लगी है ।
त्यों 'पद्माकर' आनन में रुचि कानन भौंह-कमान लगी है ॥

देति पिया न छुवै छतियाँ बतियाँन में तो मुसुक्यान लगी है ।
प्रीतमैं पान खवाइबे कों परजंक के पास लौं जान लगी है ॥४०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

दूरहि तें दृग दै रहति, कहति कछू नहिं बात ।
छिनक छबीले कों सु तिय, छुवन देति क्यों गात ? ॥४१॥

मध्या को लक्षण

इक समान जब ह्वै रहत, लाज मदन ये दोइ ।
जा तिय के तन में तबहिं, मध्या कहिये सोइ ॥४२॥

मध्या को उदाहरण—(सवैया)

आई जु चालि गुपाल घरे ब्रजबाल बिसाल मृनाल-सी बाँहीं ।
त्यों 'पद्माकर' सूरति में रति छ्वै न सकै कित हूँ परछाँहीं ॥
सोभित संभु मनो उर-ऊपर मौज मनोभव की मन माहीं ।
लाज बिराजि रही अँखियान में प्रान में कान्ह जुबान में नाहीं ॥४३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मदन-लाज-बस तिय-नयन, देखत बनत इकंत ।
इँचे-खिँचे इत-उत फिरत, ज्यों दुनारि के कंत ॥४४॥

प्रौढ़ा को लक्षण

ललित लाज कछु मदन बहु, सकल केलि की खानि ।
प्रौढ़ा ताही सों कहत, सुकबिन की मति मानि ॥४५॥

प्रौढ़ा को उदाहरण—(कवित्त)

रति बिपरीत रची दंपति गुपति अति,
मेरे जानि मानि भय मनमथ-नेजे तें ।
कहै 'पद्माकर' पगी यों रस-रंग जा में,
खुलि गे सु अंग सब रंगनि अमेजे तें ॥

नीलमनि-जटित सुबेंदा उच्च कुच पै, पर्‌यो है
टूटि ललित ललाट के मजेजे तें।
मानो गिर्‌यो हेमगिरि-स्रृंग पै सुकेलि करि,
कढ़ि कै कलंक कलानिधि के करेजे तें ॥४६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तिय-तन लाज-मनोज की, यों अब दसा दिखाति ।
ज्यों हिमंत ऋतु में सदा, घटत-बढ़त दिन-राति ॥४७॥

प्रौढ़ा के भेद

प्रौढ़ा द्विविध बखानहीं, रतिप्रीता इक बाम ।
आनँद-अति-संमोहिता, लखन इन के नाम ॥४८॥

रतिप्रीता को उदाहरण—(सवैया)

लै पट पीतम के पहिरे पहिराइ पियै चुनि चूनरी खासी ।
त्यों 'पद्‌ममाकर' साँझ ही तें सिगरो निसि केलि-कला परगासी ॥
फूलत फूल गुलाबन के चटकाहट चौंकि चली चपला-सी ।
कान्ह के काननि आँगुरी नाइ रही लपटाइ लवंगलता-सी ॥४९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

करति केलि पिय-हिय लगी, कोककलनि अवरेखि ।
बिमुद कुमुद-लौं ह्वै रही, चंद मंददुति देखि ॥५०॥

आनंदसंमोहिता को उदाहरण—(सवैया)

रीति रची बिपरीति रची रति प्रीतम-संग अनंग-झरी में ।
त्यों 'पद्‌माकर' टूटे हरा ते सरासर सेज परे सिगरी में ॥
यों करि केलि बिमोहित ह्वै रही आनँद की सुघरी उघरी में ।
नीवी औ बार सँभारिबे की सु भई सुधि नारि कों चारि घरी में ॥५१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

भई मगन यों नागरी, सु लहि सुरति-आनंद ।
अँग अँगोछि भूषन-बसन, पहिरावति नँदनंद ॥५२॥

मध्या औ प्रौढ़ा के भेद

मान-समै मध्या त्रिबिध, त्रिधा कहत प्रौढ़ाहि ।
धीरा बहुरि अधीर गनि, धीराधीरा ताहि ॥५३॥

मध्या धीरा को लक्षण—(दोहा)

कोप जनावै ब्यंग सों, तजै न पति-सनमान ।
मध्या धीरा कहत हैं, ता कों सुकबि सुजान ॥५४॥

मध्या धीरा को उदाहरण—(कवित्त)

पीतम के संग ही उमगि उड़ि जैबे कों,
न एती अंग-अंगनि परंद पखियाँ दई ।
कहै 'पद्माकर' जे आरती उतारैं चौंर ढारैं,
श्रम हारैं पै न ऐसी सखियाँ दई ॥
देखि दृग द्वै ही सों न नेक हु अघैये,
इन ऐसे झुकाझुक में झपाक झखियाँ दई ।
कीजै कहा राम स्याम-आनन बिलोकिबे कों,
बिरचि बिरंचि न अनंत अँखियाँ दई ॥५५॥

पुनर्यथा—(सवैया)

भाल पै लाल गुलाल गुलाब सों गेरि गरे गजरा अलबेलौ ।
यों बनि बानिक सों 'पद्माकर' आये जु खेलन फाग तौ खेलौ ॥
पै इक या छबि देखिबे के लिये मो बिनती कै न झोरिन झेलौ ।
रावरे रंग-रँगी अँखियान में ए बलबीर अबीर न मेलौ ॥५६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

जो जिय में सो जीभ में, रमन रावरे ठौर ।
आज-कालिह के नरन के, जीभ कछू जिय और ॥५७॥

मध्या अधीरा को लक्षण

करै अनादर कंत को, प्रगट जनावै कोप ।
मध्य अधीरा नायिका, ताहि कहत करि चोप ॥५८॥

मध्या अधीरा को उदाहरण—(कवित्त)

भूले-से भ्रमे-से काहि सोचत श्रमे-से,
अकुलाने-से बिकाने-से ठगे-से ठीक ठाये हौ ।
कहै 'पद्माकर' सु गोरे-रंग-बोरे दृग,
थोरे-थोरे अजब कुसुंभी करि ल्याये हौ ॥
आगे कों धरत पर पीछे कों परत पग,
भोर ही तें आज कछु और छबि छाये हौ ।
कहाँ आये ?, तेरे धाम, कौन काम ?, घर जानि,
तहाँ जाउ, कहाँ ?, जहाँ मन धरि आये हौ ॥५९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

दाहक नाहक नाह मुहि, करिहौ कहा मनाय ।
सुबस भये जा तीय के, ताके परसौ पाय ॥६०॥

मध्या धीराधीरा को लक्षण

धीर बचन कहि कै जो तिय, रोइ जनावै रोष ।
मध्या धीराधीर तिय, ताहि कहत निरदोष ॥६१॥

मध्या धीराधीरा को उदाहरण—(कवित्त)

ए बलि कहौ हो किन ?, का कहत कंत ?, अरी
रोष तज, रोष कै कियो मैं का अवाहे को ? ।

कहै 'पद्माकर' यहै तो दुख दूरि करौ,
दोष न कछू है तुम्हैं नेह निरबाहे को ॥
तो पै इत रोवति कहा हौ ?, कहौ कौन आगे ?,
मेरेई जु आगे किये आँसुन उमाहे को ।
को हौं मैं तिहारी ?, तू तौ मेरी प्रानप्यारी, अजी
होती जौ पियारी तब रोती कहौ काहे को ? ॥६२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

करि आदर तिय पीय को, देखि दृगनि अलसानि ।
सुमुख मोरि बरषन लगी, लै उसास अँसुआनि ॥६३॥

प्रौढ़ा धीरा को लक्षण

उर उदास रति तें रहै, अति आदर की खानि ।
प्रौढ़ा धीरा नायिका, ताहि लीजिये जानि ॥६४॥

प्रौढ़ा धीरा को उदाहरण—(कवित्त)

जगर-मगर दुति दूनी केलि-मंदिर में,
बगर-बगर धूप-अगर बगार्‌यो तू ।
कहै 'पद्माकर' त्यों चंद तें चटकदार,
चुंबन में चारु मुखचंद अनुसार्‌यो तू ॥
नैनन में बैनन में सखी और सैनन में,
जहाँ देखौ तहाँ प्रेम पूरन पसार्‌यो तू ।
छपत छपायें तऊ छल न छबीली अब,
उर लगिबे की बार हार न उतार्‌यो तू ॥६५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

दरस दौरि पिय-पग परखि, आदर कियो अछेह ।
तेह गेहपति जानि गो, निरखि चौगुनो नेह ॥६६॥

प्रौढ़ा अधीरा को लच्छण

कछु तरजन, ताड़न कछू, करि जु जनावै रोष।
प्रौढ़ अधीरा नायिका, निरखि नाह को दोष ॥६७॥

प्रौढ़ा अधीरा को उदाहरण—(कवित्त)

रोष करि पकरि परोस तें लियाई घरै,
पी कों प्रानप्यारी भुज-लतनि भरै-भरै।
कहै 'पद्माकर' ए ऐसो दोष कीजै फेरि,
सखिन समीप यों सुनावति खरै-खरै॥
त्यौ छल छपावै बात हँसि बहरावै, तिय
गद्गद कंठ दृग आँसुन झरै-झरै।
ऐसी धन धन्य, धनी धन्य है सु ऐसो जाहि,
फूल की छरी सों खरी हनति हरै-हरै ॥६८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तेह - तरेरे दृगनहीं, राखति क्यों न अँगोट।
छैल छबीले पै कहा, करति कमल की चोट ॥६९॥

प्रौढ़ा धीराधीरा को लच्छण

रति तें रूखी है जहाँ, डर जु दिखावै बाम।
प्रौढ़ा धीर-अधीर तिय, ताहि कहत रसधाम ॥७०॥

प्रौढ़ा धीराधीरा को उदाहरण—(कवित्त)

छबि छलकन-भरी पीक पलकन त्यों ही,
श्रमजल-कन अलकन अधिकाने ज्वै
कहै 'पद्माकर' सुजान रूपखानि तिया,
ताकि-ताकि रही ताहि आपुहि अजाने है॥

परसत गात मनभावन के भावती की,
गईं चढ़ि भौंहैं रहीं ऐसी उपमानैं द्वै।
मानो अरबिंदन पै चंद कों चढ़ाइ दीन्हीं,
मान-कमनैत बिन रोदा की कमानैं द्वै ॥७१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अनत-रमे पति की सुरति, गहि-गहि गहकि गुनाह ।
दृग मरोरि मुख मोरि तिय, छुवन देति नहिं छाँह ॥७२॥

ज्येष्ठा-कनिष्ठा को लक्षण

बरनत जेठ कनिष्ठिका, जहँ ब्याही तिय दोइ ।
पिय-प्यारी जेठा कही, अतिप्यारी लघु सोइ ॥७३॥

ज्येष्ठा-कनिष्ठा को उदाहरण—(कवित्त)

दोऊ छबि छाजतीं छबीली मिलि आसन पै,
जिनहिं बिलोकि रह्यो जात न जितै-जितै ।
कहै 'पद्माकर' पिछौंहैं आइ आदर सों,
छलिया छबीलो छैल बासर बितै-बितै ॥
मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग-मिचावनी के ख्यालनि हितै-हितै ।
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य-धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै ॥७४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

जल-बिहार पिय-प्यारि को, देखति क्यों न सहेलि ।
लै चुभकी तजि एक तिय, करत एक सों केलि ॥७५॥

इति स्वकीया ।

अथ परकीया को लक्षण—(दोहा)

होइ जु तिय परपुरुष-रत, परकीया सो बाम।
ऊढ़ा प्रथम बखानहीं, बहुरि अनूढ़ा नाम ॥७६॥

ऊढ़ा को लक्षण

जो ब्याही तिय और की, करत और सों प्रीति।
ऊढ़ा ता कों कहत हैं, हिये राखि रस-रीति ॥७७॥

ऊढ़ा को उदाहरण—(कवित्त)

गोकुल के कुल के, गली के गोप गाँवन के,
जौ लगि कछू-को-कछू भारत भनैं नहीं।
कहै 'पद्माकर' परोस - पिछबारन तें,
द्वारन तें दौरि गुन - औगुन गनैं नहीं ॥
तौ लौं चलि चातुर सहेली आइ कोऊ कहूँ,
नीके के निचोरै ताहि करत मनै नहीं।
हौं तौ स्याम-रंग में चुराइ चित चोराचोरी,
बोरत तौ बोर्‌यो पै निचोरत बनै नहीं ॥७८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

चढ़ी हिँडोरे हरषि हिय, सजि तिय बसन सुरंग।
तन झूलत पिय-संग में, मन झूलत हरि-संग ॥७९॥

अनूढ़ा को लक्षण

अनब्याही तिय होति जहँ, सरस -पुरुष-रस-लीन।
ताहि अनूढ़ा कहत हैं, कबि पंडित परबीन ॥८०॥

अनूढ़ा को उदाहरण—(सवैया)

जाँव नहीं कुल गोकुल में अरु दूनी दुहूँ दिसि दीपति जागै।
त्यों 'पद्माकर' जोई सुनै जहाँ सो तहँ आनँद में अनुरागै ॥

ए दई ऐसो कछू कर ब्यौंत जु देखें अदेखिन के दृग दागै ।
जा में निसंक ह्वै मोहन कों भरिये निज अंक कलंक न लागै ॥८१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कुसल करै करतार तौ, सकल संक सियराइ ।
यार कारपन को जु पै, कहूँ ब्याहि लै जाइ ॥८२॥

षट्विध परकीया

इक परकीया के कहैं, षटबिध भेद बखानि ।
प्रथमहि गुप्ता जानिये, बहुरि बिदग्धा मानि ॥८३॥
ललित लच्छिता तीसरी, चौथी कुलटा होइ ।
पँचई मुदिता, षष्ठई है अनुसयना सोइ ॥८४॥

गुप्ता के भेद

कही जु गुप्ता तीनि बिधि, सुकबिन हूँ समुझाइ ।
भूत - सुरति-संगोपना, प्रथम भेद यह आइ ॥८५॥
बर्तमान - रतिगोपना, भेद दूसरो जान ।
पुनि भविष्य-रतिगोपना, लच्छन नाम प्रमान ॥८६॥

भूत-सुरतिसंगोपना को उदाहरण—(कवित्त)

आली हौं गई ही आज भूलि बरसाने कहूँ,
वा पै तू परै है 'पद्माकर' तनैनी क्यों ।
ब्रज-बनिता वै बनितान पै रची है फाग,
तिन में जु ऊधमिनि राधा मृगनैनी यों ॥
घोरि डारी केसरि सुबेसरि बिलोरि डारी,
बोरि डारी चूनरि चुचात रंग-रनी ज्यों ।
मोहि झकझोरि डारी कंचुकी मरोरि डारी,
तोरि डारी कसनि बिथोरि डारी बैनी त्यों ॥८७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

छुटत कंप नहिं रैन-दिन, बिदित बिदारनि काय ।
अति सीतल हेमंत की, अरी जरी यह बाय ॥८८॥

वर्तमान-सुरतिगोपना को उदाहरण—(सवैया)

ऊधम ऐसो मचो ब्रज में सबै रंग-तरंग उमंगनि सीचैं ।
त्यों 'पद्माकर' छज्जनि छातनि छ्वै छिति छाजतीं केसरि-कीचैं ॥
दै पिचकी भजी भीजी तहाँ परे पीछे गोपाल गुलाल उलीचैं ।
एक ही संग इहाँ रपटे सखी ये भये ऊपर हौं भई नीचैं ॥८९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

चढ़त घाट बिचल्यो सु पग, भरी आनि इन अंक ।
ताहि कहा तुम तकि रहीं, या में कौन कलंक ॥९०॥

भविष्य-सुरतिगोपना को उदाहरण—(कवित्त)

आज तें न जैहौं दधि बेचन, दुहाई खाउँ
मैया की, कन्हैया उत ठाढ़ोई रहत है ।
कहै 'पद्माकर' त्यों साँकरी गली है अति,
इत-उत भाजिबे कों दाँउ ना लहत है ॥
दौरि दधि-दान-काज ऐसो अमनैक तहाँ,
आली बनमाली आइ बहियाँ गहत है ।
भादों सुदी चौथ को लख्यो री मृगअंक या तें,
झूठ हू कलंक मोहि लागिबो चहत है ॥९१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कोऊ कछु अब काहु पै, मति लगाइये दोष ।
होन लग्यो ब्रज-गलिन में, हुरिहारिन को घोष ॥९२

विदग्धा के भेद

द्विविध विदग्धा जानिये, बचन-विदग्धा एक ।
क्रिया-विदग्धा दूसरी, भाषत बिदित-बिबेक ॥९३॥

वचन-विदग्धा को लक्षण

बचनन की रचनान सों, जो साधै निज काज ।
बचन - बिदग्धा नायिका, ताहि कहत कबिराज ॥९४॥

वचनविदग्धा को उदाहरण—(सवैया)

जब लौं घर को धनी आवै घरै तब लौं तौ कहूँ चित दैबो करौ ।
'पद्माकर' ये बछरा अपने बछरान के संग चरैबो करौ ॥
अरु औरन के घर तें हम सों तुम दूनी दुहावनी लैबो करौ ।
नित साँझ-सबेरे हमारी हहा हरि! गैया भला दुहि जैबो करौ ॥९५॥

पुनर्यथा—

पिय पागे परोसिन के रस में बस में न कहूँ बस मेरे रहैं ।
'पद्माकर' पाहुनी-सी ननदी, न नदी तजै पै अवसेरे रहैं ॥
दुख और यों का सों कहौं, को सुनै, ब्रज की बनिता दृग फेरे रहैं ।
न सखी घर साँझ-सबेरे रहैं, घनस्याम घरी-घरी घेरे रहैं ॥९६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कल करील की कुंज में, रह्यो अरुझि मो चीर ।
ये बलबीर अहीर के, हरत क्यों न यह पीर ॥९७॥

पुनर्यथा—

कनक-लता श्रीफल-फरी, रही बिजन बन फूलि ।
ताहि तजत क्यों बावरे, अरे मधुप मति भूलि ॥९८॥

क्रिया-विदग्धा को लक्षण

जो तिय साधै काज निज, करि कछु क्रिया सुजान ।
क्रिया-बिदग्धा नायिका, ताहि लीजिये जान ॥९९॥

क्रिया-विदग्धा को उदाहरण—(कवित्त)

बंजुल निकुंजन में मंजुल महल-मध्य,
मोतिन की झालरैं किनारिन में कुरबिंद ।
आइ गे तहाँई 'पद्माकर' पियारे कान्ह,
आनि जुरि गये त्यों चबाइन के नीके बृंद ॥
बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरंग-कैसी,
पीठि दै प्रबीनी दृग-दृगनि मिलै अनिंद ।
आछे अवलोकि रही आये रस-मंदिर में,
इंदीवर-सुंदर गुबिंद को मुखारबिंद ॥१००॥

पुनर्यथा—(दोहा)

करि गुलाल सों धूँधुरित, सकल ग्वालिनी ग्वाल ।
रोरी मीड़न के सु मिस, गोरी गह्यो गोपाल ॥१०१॥

लक्षिता को लक्षण

जा तिय को जिय आन-रत, जानि कहै तिय आन ।
ताहि लक्षिता कहत हैं, जे कबि कला-निधान ॥१०२॥

लक्षिता को उदाहरण—(सवैया)

ब्रजमंडली देखि सबै 'पद्माकर' ह्वै रही यों चुपचाप री है ।
मनमोहन की बहियाँ में छुटी उपटी यह बेनी दिखा परी है ॥
मकराकृत कुंडल की झलकैं इत हू भुज-मूल पै छाप री है ।
इन की उन से जो लगी अँखियाँ कहिये तौ हमैं कछू का परी है ॥१०३

पुनर्यथा—

बीतिबे ही सु तौ बीति चुकी अब आँजती हौ किहि काज लुकंजन ।
त्यों 'पद्माकर' हाल कहै मति लाल करौ दृग ख्याल के खंजन ॥
रेखत कंचुकी के चुकी के बिच होत छिपायें कहा कुच-कंजन ।
तोहि कलंक लगाइबे कौं लग्यो कान्हहि के अधरान में अंजन ॥१०४

पुनर्यथा—(दोहा)

घर न कंत हेमंत-रितु, राति जागती जात ।
दबकि द्यौस सोवन लगी, भली नहीं यह बात ॥१०५॥

कुलटा को लक्षण

है बहु लोगन सों जु तिय, राखति रति की चाह ।
कुलटा ताहि बखानहीं, जे कबीन के नाह ॥१०६॥

कुलटा को उदाहरण—(सवैया)

ज्यों अलबेली अकेली कहूँ सुकुमार सिंगारनि कै चलै कै चलै ।
त्यों 'पद्माकर' एकन के उर में रसबीजनि ब्वै चलै ब्वै चलै ॥
एकन सों बतराइ कछू छिन एकन को मन लै चलै लै चलै ।
एकन कों तकि घूँघट में मुख मोरि कनैखिन दै चलै दै चलै ॥१०७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बिपिन बाग बीथी जहाँ, प्रबल-पुरुष-मय ग्राम ।
कामकलित बलि बाम कों, तहाँ तनिक बिश्राम ॥१०८॥

मुदिता को लक्षण

सुनत-लखत चितचाह की बात-घात अभिराम ।
मुदित होइ जो नायिका, ता को मुदिता नाम ॥१०९॥

मुदिता को उदाहरण—(कवित्त)

बृंदावन बीथिन बिलोकन गई ही जहाँ,
राजत रसाल बन ताल'रु तमाल को ।
कहै 'पद्माकर' निहारत बन्योई तहाँ,
नेहिन को नेह प्रेम अद्भुत ख्याल को ॥
दूनो-दूनो बाढ़त सु पूनो की निसा में,
अहो आनँद अनूप-रूप काहू ब्रजबाल को ।

कुंज तें कहूँ कों सुनि कंत को गमन,
लखि आगमन तैसो मनहरन गोपाल को ॥११०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

परखि प्रेम-बस परपुरुष, हरषि रही मति-मैन ।
तब लगि झुकि आई घटा, अधिक अँधेरी रैन ॥१११॥

त्रिविध अनुशयाना

कही सुअनुसयना त्रिबिध, प्रथम भेद यह जानि ।
बर्तमान-संकेत के बिघटन तें सुख-हानि ॥११२॥

प्रथम अनुशयाना को उदाहरण—(कवित्त)

सूने घर परम परोसी के सुजान तिया,
आई सुनि-सुनि कै परोसिन मनो अराति ।
कहै 'पद्माकर' सु कंचन-लता-सी लचि,
ऊँची लेति साँस यों हिये में त्यों नहीं समाति ॥
जाइ-आइ जहाँ-तहाँ बैठि-उठि जैसे-तैसे,
दिन तौ बितायो बधू बीतति है कैसे राति ।
ताप सरसानी देखें अति अकुलानी,
जऊ पति उर आनी तऊ सेज में बिलानी जाति॥११३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सौति-जोग न रोग कछु, नहिं बियोग बलवंत ।
ननद होत क्यों दूबरी, लागत ललित बसंत ॥११४॥

दूसरी अनुशयाना को लक्षण

होनहार संकेत को, धरि अभाव उर माहि ।
दुखित होत जो, दूसरी कह अनुसयना ताहि ॥११५॥

दूसरी अनुशयाना को उदाहरण—(कवित्त)

चालौ सुनि चंदमुखी चित में सु चैन करि,
तित बन-बागनि घनेरे अलि घूमि रहे ।
कहै 'पद्माकर' मयूर मंजु नाचत हैं,
चाह सों चकोरिन चकोर चूमि-चूमि रहे ॥
कदम अनार आम अगर असोक-थोक,
लतनि-समेत लोने-लोने लगि भूमि रहे ।
फूलि रहे फलि रहे फैलि रहे फबि रहे,
झपि रहे झूलि रहे झुकि रहे झूमि रहे ॥११६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

निघटत फूल गुलाब के, धरति क्यों न धन! धीर ।
अमल कमल फूलन लगे, बिमल सरोवर-नीर ॥११७॥

तीसरी अनुशयाना को लक्षण

जो तिय सुरत-सँकेत को, रमन-गमन अनुमान ।
ब्याकुल होति सु तीसरी, अनुसयना पहिचान ॥११८॥

तीसरी अनुशयाना को उदाहरण—(सवैया)

चारिहुँ ओर तें पौन-झकोर, झकोरनि घोर घटा घहरानी ।
ऐसे समै 'पद्माकर' काहु की आवति पीतपटी फहरानी ॥
गुंज की माल गोपाल गरे ब्रजबाल बिलोकि थकी थहरानी ।
नीरज तें कढि नीर-नदी छबि-छीजत छीरज पै छहरानी ॥११९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कल करील की कुंज तें, उठत अतर की बोय ।
भयो तोहि भाभी कहा, उठी अचानक रोय ॥१२०॥

इति परकीयानिरूपणम् ।

अथ गणिका को लक्षण—(दोहा)

करै और सों रति रमनि, इक धन ही के हेत ।
गनिका ताहि बखानहीं, जे कबि सुमति-निकेत ॥१२१॥

गणिका को उदाहरण—(कवित्त)

आरस सों आरत सँभारत न सीस-पट,
गजब गुजारत गरीबन की धार पर ।
कहै 'पद्माकर' सुगंध सरसावै सुचि,
बिथुरि बिराजैं बार हीरन के हार पर ॥
छाजति छबीली छिति छहरि छरा को छोर,
भोर उठि आई केलि-मंदिर के द्वार पर ।
एक पग भीतर सु एक देहरी पै धरे,
एक कर कंज, एक कर है किवार पर ॥१२२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तन सुबरन सुबरन बसन, सुबरन उकति उछाह ।
धनि सुबरन-मै ह्वै रही, सुबरन ही की चाह ॥१२३॥

इति गणिका ।

अथ त्रिविध नायिका—(दोहा)

प्रथम कही जे नायिका, ते सब त्रिबिध बिचार ।
अन्यसुरति-दुखिता सु इक, मानवती पुनि नारि ॥१२४॥
फिरि बक्रोकति-गर्बिता, इहि बिधि भिन्न प्रकार ।
तिन के लच्छन लक्ष्य सब, भाषत मति-अनुसार ॥१२५॥

अन्यसुरति-दुःखिता को लक्षण

प्रीतम-प्रीति-प्रतीति जो, और तिया तन पाइ ।
दुखित होइ सो जानिये, अन्यसुरति-दुखिताइ ॥१२६॥

अन्यसुरति-दुःखिता को उदाहरण—(कवित्त)

बोलति न काहे ए री ? पूछे बिन बोलौं कहा,
पूछति हौं कहा भई खेद-अधिकाई है ? ।
कहै 'पद्माकर' सु मारग के गये-आये,
साँची कहु मो सों आज कहाँ गई-आई है ? ।।
गई-आई हौं तो पास साँवरे के, कौन काज ?,
तेरे लिये ल्यावन सु तेरिय दुहाई है ।
काहे तें न ल्याई फिरि मोहन बिहारी जू कों ?
कैसे वाहि ल्याऊँ ? जैसे वा को मन ल्याई है ।।१२७।।

पुनर्यथा—

धोई गई केसरि कपोल कुच गोलन की,
पीक-लीक अधर - अमोलनि लगाई है ।
कहै 'पद्माकर' त्यों नैन हूँ निरंजन भे,
तजत न कंप देह पुलकनि छाई है ।।
बाद मति ठानै झूठबादिन भई री अब,
दूतिपनो छोड़ि धूतपन में सुहाई है ।
आई तोहि पीर न पराई महापापिन तू,
पापी लौं गई न कहूँ बापी न्हाइ आई है ।।१२८।।

पुनर्यथा—(दोहा)

खान-पान सय्या-सयन, जासु भरोसे आइ ।
करै सो छल चलि आप सों, ता सों कहा बसाइ ।।१२९।।

मानिनी को लक्षण

पिय सों करै जु मान तिय, वहै मानिनी जान ।
ता को कहत उदाहरन, दोहा-कवित बखान ।।१३०।।

मानिनी को उदाहरण—(सवैया)

मोहि तुम्हैं न उन्हैं न इन्हैं मनभावती कों सु मनावन ऐहै ।
त्यों 'पद्माकर' मोरन को सुनि सोर कहो नहिं को अकुलैहै ॥
धीर धरो किन मेरे गुबिंद घरीक में जो या घटा घहरैहै ।
आपुहि तें तजि मान तिया हरुवै-हरुवै गरुवै लगि जैहै ॥१३१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

और तजे तौर हु तजे, भूषन अमल अमोल ।
तजन कह्यो न सुहाग में, अंजन तिलक तमोल ॥१३२॥

गर्विता के भेद

वह बक्रोकति-गर्विता, द्विविध कहत रस-धाम ।
प्रेमगर्बिता एक, पुनि रूप - गर्बिता नाम ॥१३३॥

द्विविध गर्विता के लक्षण

करै प्रेम को गर्ब जो, प्रेमगर्बिता नारि ।
रूपगर्बिता होत वह, रूप - गर्ब कों धारि ॥१३४॥

प्रेमगर्विता को उदाहरण—(सवैया)

मो बिन माइ न खाइ कछू 'पद्माकर' त्यों भई भाभी अचेत है ।
बीरन आये लिवाइबे कों तिन की मृदुबानि हू मानि न लेत है ॥
प्रीतम को समुझावति क्यों नहीं, ये सखी तू जु पै राखति हेत है ।
और तो मोहि सबै सुख री, दुख री यहै माइके जान न देत है॥१३५॥

पुनर्यथा—

हौं अलि आज बड़े तरके भरि कै घट गोरस कौं पग धारो ।
त्यों कब को धौं खर्यो री हुतो 'पदमाकर' मो हित मोहनीवारो ॥
साँकरी खोरि में काँकरी की करि चोट चलो फिर लौटि निहारो ।
ता खिन तें इन आँखिन तें न कढ़यो वह माखन चाखनहारो ॥१३६

पुनर्यथा—(दोहा)

कछु न खाति अनखाति अति, बिरह-बरी बिललाति ।
अरी सयानी सौति की, बिपति कही नहिं जाति ॥१३७॥

रूपगर्विता को उदाहरण—(सवैया)

है नहिं माइको मेरी भटू यह सासुरो है सब की सहिबो करौ ।
त्यों 'पद्माकर' पाइ सोहाग सदा सखियान हू कों चहिबो करौ ॥
नेह-भरी बतियाँ कहि कै नित सौतिन की छतियाँ दहिबो करौ ।
चंदमुखी कहैं होती दुखी तौ न कोऊ कहैगो सुखी रहिबो करौ ॥१३८

पुनर्यथा—(दोहा)

निरखि नैन, मृग-मीन-से उठीं सबै मिलि भाखि ।
पर-घर जाइ गँवाइ रिस, हौं आई रस राखि ॥१३९॥

इति त्रिविध नायिका ।

अथ दशविध नायिकाकथनम्—(दोहा)

प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता होइ ।
बिप्रलब्ध, उत्कंठिता, बासकसज्जा जोइ ॥१४०॥
स्वाधिनपतिका हू कहत, अभिसारिका बखानि ।
प्रगट प्रवत्स्यत्प्रेयसी, आगतपतिका जानि ॥१४१॥
ये सब दसविध नायिका, कबिन कहीं निरधारि ।
तिनके लच्छन लक्ष्य सब, क्रम तें कहत बिचारि ॥१४२॥

प्रोषितपतिका को लच्छण

पिय जाको परदेस में, प्रोषितपतिका सोइ ।
उदित उदीपन तें जु, तन संतापित अति होइ ॥१४३॥

मुग्धा प्रोषितपतिका को उदाहरण—(कवित्त)

माँगि सिख नौ दिन की न्यौते गे गोबिंद,
तिय सौ दिन समान छिन मान अकुलावै है ।

कहै 'पद्माकर' छपाकर छपाकर तें,
बदन-छपाकर मलीन मुरझावै है ॥
बूझत जु कोऊ कै 'कहा री भयो तोहि',
तब और ही को और कछू बेदन बतावै है ।
आँसू सकै मोचि न सँकोच-बस आलिन में,
उलही बिरह-बेलि दुलही दुरावै है ॥१४४॥

पुनर्यथा—(सवैया)

बालम के बिछुरे ब्रजबाल को हाल कह्यो न परै कछु ह्याँ हीं
ज्वै-सी गई दिन तीन ही में तब औधि लौं क्यों बचिहै छबि-छाँहीं।
तीर-सो धीर समीर लगै 'पद्माकर' बूझि हू बोलति नाहीं ।
चंद-उदौ लखि चंदमुखी मुखमंद ह्वै पैठति मंदिर माहीं ॥१४५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

भरति उसासनि दृग भरति, करति गेह के काज ।
पल-पल पर पीरी परति, परी लाज के राज ॥१४६॥

मध्या प्रोषितपतिका को उदाहरण—(सवैया)

अब ह्वैहै कहा अरबिंद-सो आनन इंदु के हाय हवाले पर्यो ।
'पद्माकर' भाषें न भाषें बनै जिय ऐसे कछूक कसाले पर्यो ॥
इक मीन बिचारो बिँध्यो बनसी पुनि जाल के जाइ दुमाले पर्यो ।
मन तो मनमोहन के सँग गो तन लाज-मनोज के पाले पर्यो ॥१४७

पुनर्यथा—(कवित्त)

ऊबत हौ डूबत हौ डगत हौ डोलत हौ,
बोलत न काहे प्रीति-रीतिन रितै चले ।
कहै 'पद्माकर' त्यों उससि उसासन सों,
आँसू वै अपार आइ आँखिन इतै चले ॥

औधि ही के आगम लौं रहत बनै तौ रहौ,
बीच ही क्यों बैरी बंध-बेदनि बितै चले।
ए रे मेरे प्रान कान्ह प्यारे के चलाचल में,
तब तौ चले न अब चाहत कितै चले ॥१४८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

रमन-आगमन औधि लौं, क्यों जिवाइयतु याहि।
रहत कंठगत आधियै, आधी निकरति आहि ॥१४९॥

प्रौढ़ा प्रोषितपतिका को उदाहरण—(कवित्त)

लागत बसंत के सु पाती लिखी प्रीतम कों,
प्यारी परवीन है "हमारी सुधि आनबी।
कहै 'पद्माकर' इहाँ को यों हवाल,
बिरहानल की ज्वाल सो दवानल तें मानबी ॥
ऊब को उसासन को पूरो परगास, सो तौ
निपट उसास पौन हू तें पहिचानबी।
नैनन को ढंग सो अनंग-पिचकारिन तें,
गातन को रंग पीरे पातन तें जानबी" ॥१५०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बरषत मेह अछेह अति, अवनि रही जल पूरि।
पथिक तऊ तुव गेह तें, उठति भभूरनि धूरि ॥१५१॥

परकीया प्रोषितपतिका को उदाहरण—(सवैया)

प्यौते गये नँदलाल कहूँ सुनि बाल बिहाल बियोग की घेरी।
ऊतरु कौन हू के 'पद्माकर' दै फिरै कुंज-गलीन में फेरी ॥
पावै न चैन सु मैन के बाननि होत छिनै-छिन छीन घनेरी।
बूझै जु कंत कहै तौ यहै तिय, पीउ पिराति है पाँसुरी मेरी ॥१५२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बिथित बियोगिनि एक तू, यों दुख सहत न काय ।
ननद ! तिहारे कंत को, पंथ बिलोकत जाय ॥१५३॥

गणिका प्रोषितपतिका को उदाहरण—(सवैया)

बीर अबीर अभीरन को दुख भाषैं बनैं न बनै बिन भाषैं ।
त्यों 'पद्माकर' मोहन-मीत के पाये सँदेस न आठयें पाखैं ॥
आये न आप न पाती लिखी मन की मन ही में रही अभिलाषैं ।
सीत के अंत बसंत लग्यो अब कौन के आगे बसंत लै राखैं ॥१५४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

पग अंकुस, कर में कमल, करि जु दियो करतार ।
सु सखि सफल ह्वैहै तबहि, जब ऐहैं घर यार ॥१५५॥

खंडिता को लक्षण

अनत-रमे रति-चिन्ह लखि, पीतम के सुभ गात ।
दुखित होइ सो खंडिता, बरनत मति-अवदात ॥१५६॥

मुग्धा खंडिता को उदाहरण—(कवित्त)

बैठी परजंक पै नवेली निरसंक जहाँ,
जागी जोति जाहिर जवाहिर की जागै ज्यों ।
कहै 'पद्माकर' कहूँ तें नंद-नंदन हू,
औचक ही आइ अलसाइ प्रेम-पागै यों ॥
झपकौं हैं पलनि पिया के पीक-लीक लखि,
झुकि झहराइ हू न नेक अनुरागै त्यों ।
वैसे ही मयंकमुखी लागत न अंक हुती,
देखि कै कलंक अब ए री अंक लागै क्यों ? ॥१५७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बिन गुन माल गोपाल-उर, क्यों पहिरी परभात ।
चकित-चित्त चुप ह्वै रही, निरखि अनोखी बात ॥१५८॥

मध्या खंडिता को उदाहरण—(कवित्त)

ख्याल मन-भाये कहूँ करि कै गोपाल, घरै
आये अति आलस मढ़ेई बड़े तरके ।
कहै 'पद्माकर' निहारि गजगामिनी के,
गजमुकतान के हिये पै हार दरके ॥
एते पै न आनन ह्वै निकसे बधू के बैन,
अधर उराहने सु दीबे-काज फरके ।
कंधन तें कंचुकी भुजान तें सु बाजूबंद,
पौंचन तें कंकन हरेई-हरे सरके ॥१५९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

रसिकराज आलस-भरे, खरे दृगन की ओर ।
कछुक कोप, आदर कछू, करत भावती भोर ॥१६०॥

प्रौढ़ा खंडिता को उदाहरण—(कवित्त)

खाये पान-बीरी-सी बिलोचन बिराजैं आज,
अंजन-अँजाये अधराधर अमी के हैं ।
कहै 'पद्माकर' गुनाकर गुबिंद देखौ,
आरसी लै अमल कपोल किन पीके हैं ॥
ऐसो अवलोकिबेई लायक मुखारबिंद,
जाहि लखि चंद-अरबिंद होत फीके हैं ।
प्रेम-रस पागि जागि आये अनुरागि, या तें
अब हम जानी कै हमारे भाग नीके हैं ॥१६१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

ताकि रहति छिन और तिय, लेत और को नाउँ ।
ए अलि ऐसे बलम की, बिबिध भाँति बलि जाउँ ॥१६२॥

परकीया खंडिता को उदाहरण—(कवित्त)

ए हो ब्रजठाकुर ठगोरी डारि, कीन्ही तब
बौरी, बिन काज अब ताको लाज मरिये ।
कहै 'पद्माकर' इते पै यो रँगीलो रूप,
देखे बिन देखे कहौ कैसे धीर धरिये ॥
अंक हू न लागी पै कलंकिनि कहाई या तें,
अरज हमारी एक याही अनुसरिये ।
साँझ कै सबेरे दिन दसयें दिवारी फाग,
कबहूँ भले जु भले आइबो तो करिये ॥१६३॥

पुनर्यथा—(सवैया)

सीख न मानी सयानी सखीन की यों 'पद्माकर' कीनो मनै को ।
प्रीति करी तुम सों बजि कै सु बिसारि करी तुम प्रीति घनै की ॥
रावरी रीति लखी इमि साँवरे होति है संपति ज्यों सपने की ।
साँच हू ताको न होत भलो जो न मानत है कही चार जने की ॥१६४॥

पुनर्यथा—

साहस हू न कहूँ रुख आपनो भाषैं बनै न बनै बिन भाषैं ।
त्यों 'पद्माकर' यों मग में रँग देखति हौं कब को रुख राखैं ॥
वा विधि साँवरे रावरे की न मिलै मरजी न मजा न मजाखैं ।
बोलनि वा न बिलोकनि प्रीति की वा मन वे न रहीं अब आँखैं ॥१६५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

गन्यो न गोकुल कुल घनो, रमन रावरे हेत ।
सु तुम चोरि चित, चोर-लौं भोर दिखाई देत ॥१६६॥

गणिका खंडिता को उदाहरण—(कवित्त)

गोसपेंच कुंडल कलंगी सिरपेंच, पेंच-
पेंचन तें खैंचि बिन बेंचे बारि आये हौ ।
कहै 'पद्माकर' कहाँ वा मूरि जीवन की,
जा की पग-धूरि पगरी पै पारि आये हौ ॥
वे गुन के सार ऐसे बेगुन के हार अब,
मेरी मनुहार कौं बृथा ही धारि आये हौ ।
पासा-सार खेलि कित कौन मनुहारिन सों,
जीति मनुहारि मनु हारि हरि आये हौ ॥१६७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बड़े साह लखि हम करी, तुम सों प्रीति बिचारि ।
कहा जानि तुम करत हौ, हमैं और की नारि ॥१६८॥

कलहांतरिता को लच्छण

प्रथम कछू अपमान करि पिय को, फिरि पछिताय ।
कलहांतरिता नायिका, ताहि कहत कबिराय ॥१६९॥

मुग्धा कलहांतरिता को उदाहरण—(सवैया)

बारी बहू मुरझानी बिलोकि जिठानी करै उपचार कितीको ।
त्यों 'पद्माकर' ऊँची उसास लखें मुख सास को है रह्यो फीको ॥
एकै कहैं इन्हैं डीठि लगी, पर भेद न कोऊ लहै दुलही को ।
ह्वै कै अजान जो कान्ह सों कीन्हो गुमान भयो वहै ज्यान ही जी को१७०

पुनर्यथा—(दोहा)

प्रथम केलि तिय-कलह की, कथा न कछु कहि जाइ ।
अतन-ताप तन ही सहै, मन-ही-मन अकुलाइ ॥१७१॥

मध्या कलहांतरिता को उदाहरण—(कवित्त)

झालरनदार झुकि झूमत बितान बिछे,
गहब गलीचा अरु गुलगुली गिलमैं।
जगर-मगर 'पद्माकर' सु दीपन की,
फैली जगा-ज्योति केलि-मंदिर अखिल मैं।
आवत तहाँई मनमोहन को लाज,
मैन जैसी कछू करी तैसी दिल ही की दिल मैं।
हेरि हरि बिलमैं, न लीन्ही हिल-मिल मैं,
रही हौं हाय मिल मैं प्रभा की झिलमिल मैं ॥१७२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

'ल्यावौ पियहि मनाइ' यह, कह्यो चहति रहि जाति।
कलह-कहर की लहर में, परी तिया पछिताति ॥१७३॥

प्रौढ़ा कलहांतरिता को उदाहरण—(कवित्त)

ए अलि इकंत पाइ पाइन परे हे आइ,
हौं न तब हेरी या गुमान बजमारे सों।
कहै 'पद्माकर' वे रूठि गे सु ऐसी भई,
नैनन तें नींद गई हाय के दवारे सों॥
रैन-दिन चैन है न मैन है हमारे बस,
ऐन मुख सूखत उसास अनुसारे सों।
प्रानन की हान-सी दिखान-सी लगी है हाय,
कौन गुन जानि मान कीन्हो प्रानप्यारे सों ॥१७४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

घन घमंड पावस-निसा, सरबर लग्यो सुखान।
परखि प्रानपति जानि गो, तज्यो मानिनी मान ॥१७५॥

परकीया कलहांतरिता को उदाहरण—(सवैया)

का सों कहा मैं कहौं दुख यों मुख सूखतई है पियूष पिये तें।
त्यों 'पद्माकर' या उपहास को त्रास मिटै न उसास लिये तें॥
व्यापी विथा यह जानि परी मनमोहन-मीत सों मान किये तें।
भूलि हू चूक परै जो कहूँ तिहि चूक की हूक न जाति हिये तें॥१७६

पुनर्यथा—(दोहा)

मोहन-मीत सभीत गो, लखि तेरो सनमान।
अब सु दगा दै तू चल्यो, अरे मुद्दई मान॥१७७॥

गणिका कलहांतरिता को उदाहरण—(सवैया)

हीर के हार, हजारन को धन, देत हुते, सुख-से सरसाने।
हौं न लयो 'पद्माकर' त्यों अरु बोली न बोल सुधारस-साने॥
वे चलि ह्याँ तें गये अनतैं अब का हम आपनी बात बखाने।
आपने हाथ सों आपने पायँ पै पाथर पारि पत्थो पछिताने॥१७८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कहा देखि दुख दाहिये, कुमति कछू जो कीन।
छैल-छगूनी-छोर तें, छला न लीनो छीन॥१७९॥

विप्रलब्धा को लक्षण

पिय-विहीन संकेत लखि, जो तिय अति अकुलाय।
ताहि बिप्रलब्धा कहत, सुकविन के समुदाय॥१८०॥

मुग्धा विप्रलब्धा को उदाहरण—(कवित्त)

खेल को बहानो कै सहेलिन के संग चलि,
आई केलि-मंदिर लौं सुंदर मजेज पर।
कहै 'पद्माकर' तहाँ न पिय पायो तिय,
त्यों ही तन तै रही तमीपति के तेज पर॥

बादृत बिथा की कथा काहू सों कछू ना कही,
लचकि लता-लौं गई लाज ही की लेज पर।
बीरी परी बिथरि कपोल पर, पीरी परी,
धीरी परी, धाइ गिरी सीरी-परी सेज पर ॥१८१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

नवल गूजरी ऊजरी, निरखि ऊजरी सेज।
उदित उजेरी रैन को, कहि न सकत कछु तेज ॥१८२॥

मध्या विप्रलब्धा को उदाहरण—(कवित्त)

पूर अँसुवान को रह्यो जो पूरि आँखिन में,
चाहत बढ्यो पै बढ़ि बाहिरै बहै नहीं।
कहै 'पद्माकर' सु धोखे हू तमाल-तरु,
चाहति गह्यो पै होइ गहब गहै नहीं ॥
काँपि कदली-लौं या अली को अवलंब कहूँ,
चाहति लह्यो पै लोकलाजनि लहै नहीं।
कंत न मिले को दुख दारुन अनंत पाइ,
चाहति कह्यो पै कछु काहू सों कहै नहीं ॥१८३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सजन-बिहूनी सेज पर, परे पेखि मुकतान।
तबहि तिया को तन भयो, मनहु अधपक्यो पान ॥१८४॥

प्रौढ़ा विप्रलब्धा को उदाहरण—(कवित्त)

आई फाग खेलन गुबिंद सों अनंद-भरा,
जा को लसै लंक मंजु मखतूल-ताग-सो।
कहै 'पद्माकर' तहाँ न ताहि मिल्यो स्याम,
छिन में छबीली को अनंग दह्यो दाग-सो ॥

कौन करै होरी कोऊ गोरी समुझावै कहा,
नागरी कों राग लग्यो बिष-सो बिराग-सो ।
कहर-सी केसरि कपूर लग्यो काल-सम,
गाज-सो गुलाब लग्यो अरगजा आग-सो ॥१८५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

निरखि सेज रँग-रँग-भरी, लगी उसासैं लैन ।
कछु न चैन चित में रह्यो, चढ़त चाँदनी रैन ॥१८६॥

परकीया विप्रलब्धा को उदाहरण—(कवित्त)

गंजन सु गुंज लग्यो तैसो पौन-पुंज लग्यो,
दोष-मनि कुंज लग्यो गुंजन सों गजि कै ।
कहै 'पद्माकर' न खोज लग्यो ख्यालन को,
घालन मनोज लग्यो बीर तीर सजि कै ॥
सूखन सु बिंब लग्यो दूषन कदंब लग्यो,
मोहि न बिलंब लग्यो आई गेह तजि कै ।
मींजन मयंक लग्यो मीत हू न अंक लग्यो,
पंक लग्यो पायनि कलंक लग्यो बजि कै ॥१८७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

लखि सँकेत सूनो सुमुखि, बोली बिकल सभीति ।
कहौ कहा किहि सुख लह्यो, करि कुमीत सों प्रीति ॥१८८॥

गणिका विप्रलब्धा को उदाहरण—(कवित्त)

निसि अँधियारी तऊ प्यारी परबीन चढ़ि,
माल के मनोरथ के रथ पै चली गई ।
कहै 'पद्माकर' तहाँ न मनमोहन सों,
भेंट भई सटकि सहेट तें अली गई ॥

चंदन सों चाँदनी सों चंद सों चमेलिन सों,
और बनबेलिन के दलनि दली गई।
आई हुती छैल के छलै कों छल-छंदन सों,
छैल तो छल्यो न आपु छैल सों छली गई ॥१८९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

इत न मैन-मूरति मिल्यो, परत कौन बिधि चैन।
धन की भई न धाम की, गई ऐस ही रैन ॥१९०॥

उत्कंठिता को लक्षण

लहि सँकेत सोचै जु तिय, रमन-आगमन - हेत।
ताही कों उतकंठिता, बरनत सुकबि सचेत ॥१९१॥

मुग्धा उत्कंठिता को उदाहरण—(सवैया)

सोचै अनागम-कारन कंत को मोचै उसासनि आँसु हू मोचै।
मोचै न हेरि हरा हिय को 'पद्माकर' मोचि सकै न सँकोचै॥
को चैत की इह चाँदनी तें अलि याहि निबाहि बिथा अवलोचै।
लोचै परी सियरी परजंक पै बीती घरीन खरी-खरी सोचै ॥१९२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अरे सु मो मन बावरे, इतहि कहा अकुलात।
अटकि अटा कित पति रह्यो, तितहि क्यों न चलि जात ॥१९३॥

मध्या उत्का को उदाहरण—(सवैया)

आये न कंत कहाँ धौं रहे भयो भोर चहै निसि जाति सिरानी।
यों 'पद्माकर' बूझ्यो चहै पर बूझि सकै न सँकोच की सानी॥
धारि सकै न उतारि सकै, गुनि हार-सिंगार हिये हहरानी।
सूल-से फूल लगे फर पै तिय फूलछरी-सी परी मुरझानी ॥१९४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अनत रमि रहे कंत क्यों, यह बूझन के चाय ।
सुमुखि सखी के श्रवन सों, मुख लगाय रहि जाय ॥१९५॥

प्रौढ़ा उत्का को उदाहरण—(कवित्त)

सौतिन के त्रास तैं रहे धौं और बास तैं,
न आये कौन गास तैं प्यौ करु सो तलास तैं ।
कहै 'पद्माकर' सुबास तैं जवास तैं,
सु फूलन की रास तैं जगी हैं महा सासतैं ॥
चाँदनी-बिकास तैं सुधाकर-प्रकास तैं, न
राखत हुलास तैं, न लाउ खसखास तैं ।
पौन करु आसतैं न जाउ उठि बास तैं,
अरी गुलाब-पास तैं उठाउ आसपास तैं ॥१९६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कियहु न मैं कबहूँ कलह, गह्यो न कबहूँ मौन ।
पिय अब लौं आयो न कत, भयो सु कारन कौन ॥१९७॥

परकीया उत्का को उदाहरण—(कवित्त)

फागुन में का गुन बिचारि ना दिखाई देत,
एती बार लाई उन कानन में नाइ आउ ।
कहै 'पद्माकर' हितू जो है हमारी,
तौ हमारे कहे बीर वहि धाम लगि धाइ आउ ॥
जोरि जो धरी है बेदरद के दुआरे होरी,
मेरी बिरहागि की उलूकन लौं लाइ आउ ।
एरी इन नैनन के नीर में अबीर घोरि,
बोरि पिचकारी चित-चोर पै चलाइ आउ ॥१९८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तजत गेह अरु गेहपति, मोहि न लगी बिलंब ।
हरि बिलंब लाई सु कत, क्यों नहिं कहत कदंब ॥१९९॥

गणिका उत्का को उदाहरण—(सवैया)

काहू कियो धौं, कहै, बस भावतो, काहू कहूँ धौं कछू छल छायो ।
त्यों 'पद्माकर' तान-तरंगनि काहू किधौं रचि रंग रिझायो ॥
जानि परै न कछू गति आज की जा हित एतो बिलंब लगायो ।
मोहन मो मन मोहिबे कौं किधौं मो मन को मनि-हार न पायो ॥२००

पुनर्यथा—(दोहा)

कहत सखिन सों ससिमुखी, सजि-सजि सकल सिँगार ।
मो मन अटक्यो हार में, अटकि रह्यो कित यार ॥२०१॥

वासकसज्जा को लक्षण

साजहि सेज-सिँगार तिय, पिय-मिलाप के काज ।
बासकसज्जा नायिका, ताहि कहत कबिराज ॥२०२॥

मुग्धा वासकसज्जा को उदाहरण—(कवित्त)

सोरह सिँगार कै नवेली की सहेलिन हूँ,
कीन्हीं केलि-मंदिर में कलपित केरै हैं ।
कहै 'पद्माकर' सु पास ही गुलाब-पास,
खासे खसखास खुसबोइन की ढेरै हैं ॥
त्यों गुलाब-नीरन सों हीरन के हौज भरे,
दंपति मिलाप-हित आरती उजेरै हैं ।
चोखी चाँदनी में बिछी चौसर, चमेलिन के,
चंदन की चौकी चारु चाँदी के चँगेरै हैं ॥२०३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

साजि सैन-भूषन-बसन, सब की नजर बचाइ।
रही पौढ़ि मिसि नींद के, दृग दुवार सों लाइ ॥२०४॥

मध्या वासकसज्जा को उदाहरण—(कवित्त)

सजि ब्रजबाल नंदलाल सों मिलै के लिये,
लगनि लगालगि में लमकि-लमकि उठै।
कहै 'पद्माकर' चिराग-ऐसी चाँदनी-सी,
चाख्यो ओर चौकन में चमकि-चमकि उठै ॥
झुकि-झुकि झूमि-झूमि झिलि-झिलि झेलि-झेलि,
झरहरी झापन में झमकि-झमकि उठै।
दूर-दूर देखौ दरीखानन में दौरि-दौरि,
दुरि-दुरि दामिनी-सी दमकि-दमकि उठै ॥२०५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सुभ सिँगार साजे सबै, दै सखीन कों पीठि।
चली अधखुले द्वार लौं, खुली-अधखुली डीठि ॥२०६॥

प्रौढ़ा वासकसज्जा को उदाहरण—(कवित्त)

चहचही चहल चहूँघा चारु चंदन की,
चंद्रक-चुनीन चौक-चौकनि चढ़ी है आब।
कहै 'पद्माकर' फराकत फरसबंद, फहरि
फुहारन की फरस फबी है फाब ॥
मोद-मदमाती मनमोहन मिलै के काज,
साजि मनि-मंदिर मनोज-कैसी महताब।
गोल गुल गादी गुल गिलमैं गुलाब गुल,
गजक गुलाबी गुल गिंदुक गुले गुलाब ॥२०७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

यों सिँगार साजे सु तिय, को करि सकत बखान।
रह्यो न कछु उपमान कों, तिहूँ लोक में आन ॥२०८॥

परकीया वासकसज्जा को उदाहरण—(कवित्त)

सोसनी दुकूलनि दुराये रूप-रोसनी है,
बूटेदार घाँघरी की घूमनि घुमाइ कै।
कहै 'पद्माकर' त्यों उन्नत उरोजन पै,
तंग अँगिया है तनी तनिन तनाइ कै॥
छुज्जन की छाँह छपि छैल के मिलै के हेत,
छाजति छपा में यों छबीली छबि छाइ कै।
ह्वै रही खरी है छरी फूल की छरी-सी छपि,
साँकरी गली में फूल-पाँखुरी बिछाइ कै ॥२०९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

फूल-बिनन-मिस कुंज में, पहिरि गुंज को हार।
मग निरखति नँदलाल को, सु बलि बार-ही-बार ॥२१०॥

गणिका वासकसज्जा को उदाहरण—(सवैया)

नीर के तीर, उसीर के मंदिर, धीर समीर जुड़ावत जीरे।
त्यों 'पद्माकर' पंकज-पुंज पुरैनि के पात परे जनु पीरे॥
ग्रीषम की क्यों गनै गरमी गज-गौहर चाह गुलाब-गँभीरे।
बैठी बधू बनि बाग-बिहार में बार बगारि सिवार-से सीरे ॥२११॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अमल अमोलिक लालमय, पहिरि बिभूषन-भार।
हरषि हिये पर तिय धर्‍यो, सुरुख सीप को हार ॥२१२॥

स्वाधीनपतिका को लक्षण

जा तिय के आधीन ह्वै, पीतम रहै हमेस।
सु स्वाधीनपतिका कही, कबिन नायिका बेस ॥२१३॥

मुग्धा स्वाधीनपतिका को उदाहरण—(कवित्त)

चाह भरयो चंचल हमारो चित नौल बधू,
तेरी चाल चंचल चितौनि में बसत है।
कहै 'पद्माकर' सु चंचल चितौनि हू तें,
औझकि-उझकि झझकनि में फसत है॥
औझकि-उझकि झझकनि तें सुरझि बेस,
बाहीं की गहनि माहिं आइ बिलसत है।
बाहीं की गहनि तें सु नाहीं की कहनि आयो,
नाहीं की कहनि तें सु नाहीं निकसत है ॥२१४॥

पुनर्यथा—(सवैया)

कबहूँ फिरि पाँव न दैहौं इहाँ भजि जैहौं तहाँ जहाँ सूधी सहौ।
'पद्माकर' देहरी द्वार किवार लगे ललचैहो, न ऐसी चहौ॥
बहियाँ की कहा, छहियाँ न कहूँ छुवै पावहुगे लला लाज लहौ॥
चित चाहै कहौ न कहौ बतियाँ उतही रहौ हा-हा हमैं न गहौ ॥२१५॥

पुनर्यथा—

सतरैबो करौ बतरैबो करौ इतरैबो करौ करौ जोई चहौ।
'पद्माकर' आनँद दीबो करौ रस लीबो करौ सुख सों उमहौ॥
कछू अंतर राखौ न राखौ चहौ पर या बिनती इक मेरी गहौ।
अब ज्यों हिय में नित बैठी रहौ त्यों दया करि कै ढिग बैठी रहौ ॥२१६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तुव अयानपन लखि भटू, लटू भये नँदलाल।
जब सयानपन पेखिहैं, तब धौं कहा हवाल ॥२१७॥

मध्या स्वाधीनपतिका को उदाहरण—(सवैया)

ता छिन तें रहै औरनि भूलि सु भूली कदंबन की परछाँहीं ।
त्यों 'पद्माकर' संग सखान को भूलि भुलाइ कला अवगाहीं ॥
जा छिन तें तू बसीकर मंत्र-सी मेली सु कान्ह के कानन माहीं ।
दै गलबाँहीं जु नाहीं करी वह नाहीं गुपाल कों भूलति नाहीं ॥२१८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

आधे-आधे दृगनि रति, आधे दृगनि सु लाज ।
राधे आधे बचन कहि, सुबस किये ब्रजराज ॥२१९॥

प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका को उदाहरण—(सवैया)

मो मुख बीरी दई सु दई सु रही रचि साधि सुगंध घनेरो ।
त्यों 'पद्माकर' केसरि-खोरि करी तौ करी सो सुहाग है मेरो ॥
बेनी गुही तौ गुही मन-भावते मोतिन माँग सँवारि सबेरो ।
और सिँगार सजे तौ सजौ इक हार हहा हियरे मति गेरो ॥२२०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अंगराग औरै अँगनि, करत कछू बरजी न ।
पै मेहँदी न दिवाइहौं, तुम सों पगनि प्रबीन ॥२२१॥

परकीया स्वाधीनपतिका को उदाहरण—(कवित्त)

उझकि झरोखा ह्वै झमकि झुकि झाँकी बाम,
स्याम की बिसरि गई रूबरि तमासा की ।
कहै 'पद्माकर' चहूँघा चैत-चाँदनी-सी,
फैलि रही तैसियै सुगंध सुभ स्वासा की ॥
तैसी छवि तकत तमोर की तरौनन की,
वैसी छवि बसन की बारन की बासा की ।
मोतिन की माँग की मुखौ की मुसुक्यान हू की,
नैनन की नथ की निहारिबे की नासा की ॥२२२॥

पुनर्यथा—

ईस की दुहाई सीस-फूल तें लटकि लट,
लट तें लटकि लटि कंध पै ठहरि गो ।
कहै 'पद्माकर' सु मंद चलि कंध हू तें,
भ्रमि-भ्रमि भाई-सी भुजा में त्यों भभरि गो ॥
भाई-सी भुजा तें भ्रमि आयो गोरी-गोरी बाँह,
गोरी बाँह हू तें चपि चूरिन में अरि गो ।
हेर्‌यो हरें-हरें हरी चूरिन तें चाह्यो जौ लौं,
तौ लौं मन मेरो दौरि तेरे हाथ परि गो ॥२२३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मैं तरुनी तुम तरुन-तन, चुगुल चबाई गाउँ ।
मुरली लै न बजाइये, कबहुँ हमारो नाउँ ॥२२४॥

गणिका स्वाधीनपतिका को उदाहरण—(सवैया)

छाक-छकी छतिया धरकै दरकै अँगिया उचकैं कुच नीके ।
त्यों 'पद्माकर' छूटत बार हू टूटत हार सिँगार जे ही के ॥
संग तिहारे न भूलहुँगी फिरि रंग-हिँडोरे सु जीवन जी के ।
यों मिचकी मचको न हहा लचकै करिहाँ मचकें मिचकी के ॥२२५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

या जग में धनि धन्य तू, सहज सलोने गात ।
धरनीधर जो बस कियो, कहा और की बात ॥२२६॥

अभिसारिका को लक्षण

बोलि पठावै पियहि, कै पिय पै आपुहि जाय ।
ताही कों अभिसारिका, बरनत कबि-समुदाय ॥२२७॥

मुग्धा अभिसारिका को उदाहरण—(सवैया)

किंकिनी छोरि छपाई कहूँ कहूँ बाजनी पायल पाँय तें नाईं ।
त्यों 'पद्माकर' पात हु के खरके कहूँ काँपि उठै छबि छाईं ॥
लाजहि तें गड़ि जाति कहूँ अड़ि जाति कहूँ गज की गति भाईं ।
बैस की थोरी किसोरी हरें-हरें या बिधि नंदकिसोर पै आईं ॥२२८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

केलिभवन नवबेलि-सी, दुलही उलहि इकंत ।
बैठि रही चुप चंद लखि, तुमहिं बुलावति कंत ॥२२९॥

मध्या अभिसारिका को उदाहरण—(सवैया)

हूले इते पर मैन-महावत लाज के आँदू परे गथि पाइन ।
त्यों 'पद्माकर' कौन कहै गति माते मतंगन की दुखदाइन ॥
ये अँग-अंग की रोसनी में सुभ सोसनी चीर चुभ्यो चितचाइन ।
जाति चली ब्रजठाकुर पै ठमका ठुमको ठमकी ठकुराइन ॥२३०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

इक पग धरति सुमंद मग, इक पग धरति अमंद ।
चली जाति इहि बिधि सखी, मन-मन करत अनंद ॥२३१॥

प्रौढ़ा अभिसारिका को उदाहरण—(सवैया)

कौन है तू कित जाति चली बलि बीती निसा अधराति प्रमानै ?
हौं 'पद्माकर' भावती हौं निज भावते पै अब ही मुहि जानै ॥
तौ अलबेली अकेली डरै किन ?, क्यों डरौं ?, मेरी सहाय के लानै ।
है सखि संग मनोभव-सो भट कान लौं बान-सरासन-तानै ॥२३२॥

पुनर्यथा—(कवित्त)

घूँघट की घूमके सु झूमके जवाहिर के,
झिलमिल झालर की भूमि लौं झुलत जात ।

कहै 'पद्माकर' सुधाकरमुखी के
हीर-हारन में, तारन के तोम-से तुलत जात ॥
मंद-मंद हैकल मतंग-लौं चलेई, भले
भुजन-समेत भुज-भूषन डुलत जात ।
घाँघरे झकोरनि चहूँघा खोरि-खोरि हु में,
खूब खसबोइ के खजाने-से खुलत जात ॥२३३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

पग द्वू पर नूपुर सुभग, जनु अलापि सुर सात ।
पिय सों तिय-आगमन की, कही सु अगमन बात ॥२३४॥

परकीया अभिसारिका को उदाहरण—(कवित्त)

मौलसिरी मंजुल की गुंजन की कुंजन की,
मो सों घनस्याम कहि काम की कथै गयो ।
कहै 'पद्माकर' अथाइन कों तजि-तजि,
गोप-गन निज-निज गेह के पथ गयो ॥
सोच मति कीजै ठकुरानी हम जानी, चित
चंचल तिहारो चढ़ि चाह के रथै गयो ।
छीन न छपा कर छपाकरमुखी तू चल,
बदन छपा कर छपाकर अथै गयो ॥२३५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

चली प्रीति-बस मीत पै, मीत चल्यो तिय चाहि ।
भई भेंट अधबीच तहँ, जहाँ न कोऊ आहि ॥२३६॥

गणिका अभिसारिका को उदाहरण—(सवैया)

केसरि-रंग-रँगी सिर-ओढ़नी कानन कीन्हे गुलाब-कली हो ।
माल गुलाल-भरी 'पदमाकर' अंगनि भूषित भाँति भली हो ॥

औरन कों छलती छिन में तुम जाती न औरन सों जु छली हौ।
फागु में मोहन को मन लै फगुवा में कहा अब लेन चली हौ ॥२३७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सही साँझ तें सुमुखि तू, सजि सब साज-समाज।
को अस बड़भागी जु है, चली मनावन-काज ॥२३८॥

दिवा अभिसारिका को उदाहरण—(कवित्त)

दिन के किवार खोलि कीनो अभिसार, पै
न जानि परी काहू कहाँ जाति चली छल-सी।
कहै 'पद्माकर' न नाँक री सँकोरै जाहि,
काँकरी पगनि लगै पंकज के दल-सी ॥
कामद-सो कानन कपूर-ऐसी धूरि लगै,
पट-सो पहार नदी लागत है नल-सी।
घाम चाँदनी सो लगै चंद-सो लगत रवि,
मग मखतूल-सो मही हू मखमल-सी ॥२३९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सजि सारँग सारँगनयनि, सुनि सारँग बन माँह।
भर-दुपहर हरि पै चली, निरखि नेह की छाँह ॥२४०॥

कृष्णा अभिसारिका को उदाहरण—(सवैया)

साँवरी सारी सखी सँग साँवरी साँवरे धारि बिभूषन ध्वै कै।
त्यों 'पद्माकर' साँवरेई अँगरागनि आँगी रची कुच द्वै कै ॥
साँवरी रैन में साँवरी पै घहरै घनघोर घटा छिति छ्वै कै।
साँवरी पाँमरी की दै खुही बलि साँवरे पै चली साँवरी ह्वै कै ॥२४१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कारी निसि कारी घटा, कचरति कारे नाग।
कारे कान्हर पै चली, अजब लगनि की लाग ॥२४२॥

शुक्ला अभिसारिका को उदाहरण—(कवित्त)

सजि ब्रजचंद पै चली यों मुखचंद जा को,
चंद-चाँदनी को मुख मंद-सो करत जात ।
कहै 'पद्माकर' त्यों सहज सुगंध ही के
पुंज, बन-कुंजन में कंज-से भरत जात ॥
बरति जहाँई-जहाँ पग है सु प्यारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही की माठ-सी ढुरत जात ।
हारन तें हीरे ढरैं सारी के किनारन तें,
बारन तें मुकुता हजारन झरत जात ॥२४३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

जुवति जुन्हाई सों न कछु, और भेद अवरेखि ।
तिय-आगम पिय जानि गो, चटक चाँदनी पेखि ॥२४४॥

प्रवत्स्यत्प्रेयसी को लक्षण

चलन चहै परदेस कों, जा तिय को जब कंत ।
ताहि प्रवत्स्यत्प्रेयसी, कहत सुकबि मतिमंत ॥२४५॥

मुग्धा प्रवत्स्यत्प्रेयसी को उदाहरण—(सवैया)

सेज-परी सफरी-सी पलोटति ज्यों-ज्यों घटा घन की गरजै री ।
त्यों 'पद्माकर' लाजन तें न कहै दुलही हिय की हरजै री ॥
आली कछू को कछू उपचार करै पै न पाइ सकै मरजै री ।
जाहिं न ऐसे समै मथुरै यह कोऊ न कान्हर कों बरजै री ॥२४६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बोलति बोल न बलि बिकल, थरथरात सब गात ।
नवयौवन के आगमन, सुनि प्रिय-गमन प्रभात ॥२४७॥

मध्या प्रवत्स्यत्प्रेयसी को उदाहरण—(सवैया)

गो-गृह-काज गुवालन के कहें देखिबे कौं कहूँ दूरि के खेरो ।
माँगि बिदा लई मोहिनी सों 'पद्माकर' मोहन होत सबेरो ॥
फेंट गही न गही बहियाँ न गरो गहि गोबिँद गौन तें फेरो ।
गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गुपाल की गैल में गेरो ॥२४८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सुनि सखीन मुख ससिमुखी, बलम जाहिँगे दूरि ।
बूझ्यौ चहति बियोगिनी, जिय-ज्यावन की मूरि ॥२४९॥

प्रौढ़ा प्रवस्त्यत्प्रेयसी को उदाहरण—(कवित्त)

सो दिन को मारग तहाँ कौं बेगि माँगि बिदा,
प्यारी 'पद्माकर' प्रभात राति बीते पर ।
सो सुनि पियारी पिय-गमन बराइबे कौं,
आँसुन अन्हाई बैठि आसन सु तीते पर ॥
बालम बिदेस तुम जात हौ तौ जाउ, पर
साँची कहि जाउ कब ऐहौ भौन-रीते पर ?
पहर के भीतर कै दो पहर भीतर ही,
तीसरे पहर कैधौं साँझ ही बितीते पर ॥२५०॥

पुनर्यथा—(सवैया)

जात हैं तौ अब जान दै री छिन में चलिबे की न बात चलैहैं ।
जौ 'पदमाकर' पौन के झूँकनि कैलिया-कूकनि लौं सहि लैहैं ॥
वे उलहे बन-बाग-बिहार निहारि-निहारि जबै अकुलैहैं ।
जैहैं न फेरि फिरे घर ऐहैं सु गाँउ तें बाहर पाँउ न दैहैं ॥२५१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

असन चले आँसू चले, चले मैन के बान ।
रमन-गमन सुनि सुख चले, चलत चलैंगे प्रान ॥२५२॥

परकीया प्रवत्स्यत्प्रेयसी को उदाहरण—(सवैया)

जो उर-भार नहीं झरसी मृदु मालती-माल वहै मग नाखै।
नेहवती जुवती 'पद्माकर' पानी न पान कछू अभिलाखै॥
झाँकि झरोखे रही कब की दबकी वह बाल मनै-मन माखै।
कोऊ न ऐसो हितू हमरो जु परोसिन के पिय कों गहि राखै ॥२५३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

ननद ! चाह सुनि चलन की, बरजति क्यों न सुकंत।
आवत बन बिरहीन को, बैरी बधिक बसंत ॥२५४॥

गणिका प्रवत्स्यत्प्रेयसी को उदाहरण—(सवैया)

आँखिन के अँसुवान ही सों निज धाम ही धाम धरा भरि जैहै।
त्यों 'पद्माकर' धीर समीरनि जीय धनी कहु क्यों धरि जैहै॥
जो तजि मोहि चलोगे कहूँ तो इती बिरहागिनि या अरि जैहै।
जैहै कहा कछु रावरे को हमरे हिय को तो हरा हरि जैहै ॥२५५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

फबत फाग फजिहत बड़ी, चलन चहत जदुराय।
को फिरि जाँचि रिझाइबी, धुनि धमार की धाय ॥२५६॥

आगतपतिका को लक्षण

आवत बलम बिदेस तें, हरषित होत जु बाम।
आगतपतिका नाइका, ताहि कहत रसधाम ॥२५७॥

मुग्धा आगतपतिका को उदाहरण—(कवित्त)

कान सुनि आगम सुजान प्रानप्रीतम को,
आनि सखियान सजी सुंदरि के आस-पास।
कहै 'पद्माकर' सु पन्नन के हौज हरे,
ललित लबालब भरे हैं जल बास-बास॥

गूँदि गेंदे गुल गज-गौहरनि गंज, गुल
गुपत गुलाबी गुल-गजरे गुलाबपास।
खासे खसबीजनि सुपौन पौनखाने खुले,
खस के खजाने खसखाने खूब खास-खास ॥२५८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

आवत लेन दुरागमन रमन, सुनत यह बानि।
हरष-छपावन-हित भटू, रही पौढ़ि पट तानि ॥२५९॥

मध्या आगतपतिका को उदाहरण—(सवैया)

नँदगाँव तें आइ गो नंदलला लखि लाड़िली ताहि रिझाइ रही।
मुख घूँघट घालि सकै नहिं माइके माइ के पीछे दुराइ रही॥
उचके कुच-कोरन की 'पद्माकर' कैसी कछू छबि छाइ रही।
ललचाइ रही सकुचाइ रही सिर नाइ रही मुसुक्याइ रही ॥२६०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बिछुरि मिले पिय तीय कौं, निरखति सुमुखि सरूप।
कछु उराहनो देन कौं, फरकत अधर अनूप ॥२६१॥

प्रौढ़ा आगतपतिका को उदाहरण—(कवित्त)

आजु दिन कान्ह-आगमन के बधाये सुनि,
छाये मग फूलनि सुहाये थल-थल के।
कहै 'पद्माकर' त्यों आरती उतारिबे कौं,
थारन में दीप हीरा-हारन के छलके॥
कंचन के कलस भराये भूरि पन्नन के,
ताने तुंग तोरन तहाँई झलाझल के।
पौरि के दुवारे तें लगाइ केलिमंदिर लौं,
पद्मिनी पाँवड़े पसारे मखमल के ॥२६२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

आवत कंत बिदेस तें, हौं ठानहुँ मुद मान ।
मानहुँगी जब करहिँगे, पुनि न गमन की आन ॥२६३॥

परकीया आगतपतिका को उदाहरण—(सवैया)

एकै चले रस गोरस लै अरु एकै चले मग फूल बिछावत ।
त्यों 'पद्माकर' गावत गीत सु एकै चले उर आनँद छावत ॥
यों नँदनंद निहारिबे कों नँदगाँव के लोग चले सब धावत ।
आवत कान्ह बने बन तें बर प्रान परै-से परोसिनि आवत ॥२६४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

रमनि-रंग औरै भयो, गयो बिरह को सूल ।
आयो नैहर सों जु सुनि, वहै बैद रसमूल ॥२६५॥

गणिका आगतपतिका को उदाहरण—(सवैया)

आवत नाह उछाह-भरे अवलोकिबे कों निज नाटकसाला ।
हौं नचि गाइ रिझावहुँगी 'पद्माकर' त्यों रचि रूप रसाला ॥
ए सुक मेरे सु मेरे कहें त्यों इते कहि बोलियो बैन बिसाला ।
कंत बिदेस रहे हो जिते दिन देहु तिते मुकुतान की माला ॥२६६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

वे आये ल्याये कहा, यह देखन के काज ।
सखिन पठावति ससिमुखी, सजति आपनो साज ॥२६७॥

इति दशविध नायिका ।

अथ नायिका के अन्य भेद—(दोहा)

त्रिबिध कही ये सब तिया, प्रथम उत्तमा मानि ।
बहुरि मध्यमा दूसरी, तीजी अधमा जानि ॥२६८॥

उत्तमा को लक्षण

सुपिय-दोष लखि-सुनि जु तिय, धरै न हिय में रोष ।
ताहि उत्तमा कहत हैं, सुकबि सबै निरदोष ।।२६९।।

उत्तमा को उदाहरण—(कवित्त)

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोबिंद कों,
"श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ ।
कहै 'पद्माकर' तिहारी छेम छिन-छिन
चाहियतु, प्यारे मन-मुदित घने रहौ ।।
बिनती इती है कै हमेस हू मुहै तौ निज,
पाइन की पूरी परिचारिका गने रहौ ।
याही में मगन मनमोहन हमारो मन,
लगनि लगाइ लाल मगन बने रहौ" ।।२७०।।

पुनर्यथा—(दोहा)

धरति न नाह-गुनाह उर, लोचन करति न लाल ।
तिय पिय को छतियाँ लगी, बतियाँ करति रसाल ।।२७१।।

मध्यमा को लक्षण

पिय-गुनाह चित-चाह लखि, करै मान-सनमान ।
ताही तिय कों मध्यमा, भाषत सुकबि सुजान ।।२७२।।

मध्यमा को उदाहरण—(कवित्त)

मंद-मंद उर पै अनंद ही के आँसुन की,
बरसै सुबूँदैं मुकुतान ही के दानै-सी ।
कहै 'पद्माकर' प्रपंची पंचबान के सु,
कानन के मान पै परी त्यों घोर घानै-सी ।।

ताजी त्रिबलीन में बिराजी छबि छाजी सबै,
राजी रोमराजी करि अमित उठानै-सी ।
सौहैं पेखि पी कों बिहसौहैं भये दोऊ दृग,
सौहैं सुनि भौंहैं गईं उतरि कमानै-सी ॥२७३॥

पुनर्यथा—

जाके मुख सामुहे भयोई जो चहत मुख,
लीन्हो सो नवाइ डीठि पगनि अवाँगी री ।
बैन सुनिबे कों अति ब्याकुल हुते जे कान,
तेऊ मूँदि राखे मजा मन हू न माँगी री ॥
झारि डार्‍यो पुलक प्रसेद हू निवारि डार्‍यो,
रोकि रसना हू त्यों भरी न कछू हाँगी री ।
एते पै रह्यो न मान मोहन लट्टू पै भट्टू,
टूक-टूक ह्वै के ज्यों छटूक भई आँगी री ॥२७४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

रह्यो मान मन को मनहि, सुनत कान्ह के बैन ।
बरजि-बरजि हारी तऊ, रुके न गरजी नैन ॥२७५॥

अधमा को लक्षण

ज्यों ही ज्यों पिय हित करत, त्यों-त्यों परति सरोष ।
ताहि कहत अधमा सुकबि, निठुराई की कोष ॥२७६॥

अधमा को उदाहरण—(सवैया)

हौं उरझाइ रिझाइबे कों रसराग कबित्तन की धुनि छाई ।
त्यों 'पद्माकर' साहस के कबहूँ न बिषाद की बात सुनाई ॥
सापने हू न कियो अपराध सु आपने हाथनि सेज बिछाई ।
त्यों परि पाइ मनाई जऊ तऊ पापिनि कों कछु पीर न आई ॥२७७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मान ठानि बैठी इतौ, सुबस नाह निज हेरि ।
कबहुँ जु परबस होहि तौ, कहा करैगो फेरि ॥२७८॥

इति नायिकानिरूपणम् ।

अथ नायकनिरूपण

नायक को लक्षण—(दोहा)

सुंदर गुन - मंदिर युवा, युवति बिलोकैं जाहि ।
कबिता-राग - रसज्ञ जो, नायक कहिये ताहि ॥२७९॥

नायक को उदाहरण—(कवित्त)

जगत-बसीकरन ह्री-हरन गोपिन के,
तरुन त्रिलोक में न तैसी सुंदराई है ।
कहै 'पद्माकर' कलान को कदंब,
अवलंबन सिँगार को सुजान सुखदाई है ॥
रसिक-सिरोमनि सुराग-रतनाकर है,
सील-गुन-आगर उजागर बड़ाई है ।
ठौर ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार,
नंद को कन्हाई-सो सु नंद को कन्हाई है ॥२८०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

दौरै को न बिलोकिबे, रसिक रूप अभिराम ।
सब सुखदायक साँच हू, लखिबे लायक स्याम ॥२८१॥

नायक के भेद

त्रिविध सु नायक पति प्रथम, उपपति बैसिक और ।
जो बिधि सों ब्याह्यो तियनि, सोई पति सब ठौर ॥२८२॥

पति को उदाहरण—(सवैया)

मंडप ही में फिरै मँड़रात, न जात कहूँ तजि नेह को औनो ।
त्यों 'पद्माकर' तोहि सराहत, बात कहै जु कछू कहूँ कौनो ॥
ये बड़भागिनी तो-सी तुही बलि, जो लखि राडरो रूप सलौनो ।
ब्याह ही तें भये कान्ह लटू, तब ह्वैहै कहा जब होहिगो गौनो ॥२८३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

आई चालि सु ससिमुखी, नखसिख रूप अपार ।
दिन-दिन तिय-जोबन बढ़त, छिन-छिन पिय को प्यार ॥२८४॥

नायक के अन्य भेद

सु अनुकूल दच्छिन बहुरि, सठ अरु धृष्ट बिचारि ।
कहे कबिन प्रति-एक के, भेद पेखि कै चारि ॥२८५॥

अनुकूल औ दक्षिण को लक्षण

जो पर-बनिता तें बिमुख, सोऽनुकूल सुखदानि ।
जु बहु तियन कों सुखद सम, सो दच्छिन गुनखानि ॥२८६॥

अनुकूल को उदाहरण—(सवैया)

एक ही सेज पै सोवत हैं 'पद्माकर' दोऊ महासुख-साने ।
सापने में तिय मान कियो यह देखि पिया अति ही अकुलाने ॥
जागि परे पै तऊ यह जानत पौढ़ि रही हम सों रिस-ठाने ।
प्रानपियारी के पा परि कै करि सौंह गरे की गरे लपटाने ॥२८७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मनमोहन-तन घन सघन, रमनि राधिका मोर ।
श्रीराधा-मुखचंद को, गोकुलचंद चकोर ॥२८८॥

दक्षिण को उदाहरण—(कवित्त)

देखि 'पद्माकर' गोविंद कों, अनंद-भरी
आई सजि साँझ ही तें हरषि हिलोरे में ।

ए हरि हमारेई हमारे चलो झूलन कों,
हेम के हिँडोरनि झुलान के झकोरे में ॥
या विधि बधून के सुबैन सुनि बनमाली,
मृदु मुसुक्याइ कह्यो नेह के निहोरे में ।
कालिह चलि झूलैंगे तिहारेई तिहारो सौंह,
आज तुम झूलौ ह्याँ हमारेई हिँडोरे में ॥२८९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

निज-निज मन के चुनि सबै, फूल लेहु इक बार ।
यह कहि कान्ह कदंब की, हरषि हलाई डार ॥२९०॥

धृष्ट को लक्षण

धरै लाज उर में न कछु, करै दोष निरसंक ।
टरै न टारें कैस हूँ, कह्यो धृष्ट सकलंक ॥२९१॥

धृष्ट को उदाहरण—(सवैया)

ठानै मजा अपने मन की उर आनै न रोष हू दोष दिये को ।
त्यों 'पद्माकर' जोबन के मद पै मद है मधुपान किये को ॥
राति कहूँ रमि आयो घरै उर मानै नहीं अपराध किये को ।
गारि दै मारि दै टारत भावती भावतो होत है हार हिये को ॥२९२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

जदपि न बैन उचारियतु, गहि निवारियतु बाँह ।
तदपि गरेई परत है, गजब गुनाही नाँह ॥२९३॥

शठ को लक्षण

स-हित काज मधुरै-मधुर, बैननि कहै बनाय ।
उर-अंतर घट कपटमय, सो सठ नायक आय ॥२९४॥

शठ को उदाहरण—(सवैया)

करि कंद कों मंद दुचंद भई फिरि दाखन के उर दागती हैं।
'पद्माकर' स्वादु सुधा तें सिरै मधु तें महा माधुरी जागती हैं॥
गनती कहा ए री अनारन की ये अँगूरन तें अति पागती हैं।
तुम बातैं निसीठी कहौ रिस में मिस्रिरी तें मिठी हमैं लागती हैं।।२९५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

हौं न कियो अपराध बलि, बृथा तानियतु भौंह।
तुव उरसिज-हर परसि कै, करत रावरी सौंह॥२९६॥

उपपति औ वैशिक को लक्षण

उपपति ताहि बखानहीं, जु परबधू को मीत।
बारबधुन को रसिक, सो बैसिक अलज अभीत॥२९७॥

उपपति को उदाहरण—(सवैया)

आछे किये कुच कंचुकी में घट में नट-कैसे बटा करिबे कौं।
मो दृग दू पै किये 'पदमाकर' तो दृग छूट छटा करिबे कौं॥
कीजै कहा बिधि की बिधि कों दियो दारुन लोटपटा करिबे कौं।
मेरो हियो कटिबे कौं कियो तिय तेरो कटाछ्र कटा करिबे कौं॥२९८॥

पुनर्यथा—

ऐसे कढ़े गन गोपिन के तन मानो मनोभव भाईं-से काढ़े।
त्यों 'पद्माकर' ग्वालन के डफ बाजि उठे गलगाजत गाढ़े॥
छाक-छके छलहाइन में छिक पावै न छैल छिनौ छबि बाढ़े।
केसरि लै मुख मींजिबे कों रस भीजत-से कर मींजत ठाढ़े॥२९९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

जाहिर जाइ सकै न तहँ, घरहाइन के त्रास।
परे रहत नित कान्ह के प्रान, परोसिनि-पास॥३००॥

वैशिक को उदाहरण—(सवैया)

छोरत ही जु छरा के छिनौ-छिन छाये तहाँई उमंग अदा के।
त्यों 'पद्माकर' जे सिसकीन के सोर घने मुख मोरि मजा के॥
दै धन धाम धनो अब तें मन हो मन मानि समान सुधा के।
बारि-बिलासिनी ती के जपै अखरा-अखरा नखरा-अखरा के॥३०१

पुनर्यथा—(दोहा)

हेरि हो-हरनि कांति वह, सुनि सी करनि सुभाँति।
दियो सौंपि मन ताहि तो, धन की कहा बिसाति॥३०२॥

नायक के अन्य त्रिविध भेद

औरौ तीनि प्रकार के, नायक-भेद बखान।
मानो सु बचनचतुर पुनि, क्रियाचतुर पहिचान॥३०३॥

मानी, वचनचतुर औ क्रियाचतुर को लक्षण

करै जु तिय पै मान पिय, मानी कहिये ताहि।
करै बचन की चातुरी, बचनचतुर सो आहि॥३०४॥
करै क्रिया सों चातुरी, क्रियाचतुर सो जानि।
इन के उदित उदाहरन, क्रम तें कहत बखानि॥३०५॥

मानी को उदाहरण—(सवैया)

बाल बिहाल परी कब की दबकी यह प्रीति की रीति निहारौ।
त्यों 'पद्माकर' है न तुम्हें सुधि कीन्हो जो बैरी बसंत बगारौ॥
ता तें मिलो मनभावती सों बलि ह्याँ तें हहा बच मानि हमारौ।
कोकिल की कल बानी सुने पुनि मान रहैगो न कान्ह तिहारौ॥३०६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

जगत जुराफा ह्वै जियत, तज्यो तेज निज भान।
रूस रहे तुम पूस में, यह धौं कौन सयान॥३०७॥

पुनर्यथा—

संयुत सुमन सुबेलि-सी, सेली - सी गुन-ग्राम ।
लसत हवेली-सी सुघर, निरखि नवेली बाम ॥३०८॥

वचनचतुर को उदाहरण—(सवैया)

दाऊ न नंदबबा न जसोमति न्यौते गये कहूँ लै सँग भारी ।
हौं हूँ इकै 'पद्माकर' पौरि में, सूनी परी बखरी निसि कारी ॥
देखै न क्यों कढ़ि तेरे सु खेत पै धाइ गई छुटि गाइ हमारी ।
ग्वाल सों बोलि गोपाल कह्यो सु गुवालिनि पै मनो मोहिनी डारी ॥३०९

पुनर्यथा—(दोहा)

बिजन बाग सँकरी गली, भयो अँधेरो आइ ।
कोऊ तोहि गहै जु इत, तौ फिरि कहा बसाइ ॥३१०॥

क्रियाचतुर को उदाहरण—(सवैया)

आई सु न्यौति बुलाई भली, दिन चारि कों, जाहि गोपाल ही भावै ।
त्यों 'पद्माकर' काहू कह्यो कै चलौ बलि बेगि ही सासु बुलावै ॥
सो सुनि रोकि सकै क्यों तहाँ गुरु लोगन में यह ब्यौंत बनावै ।
पाहुनी चाहै चल्यो जबहीं तबहीं हरि सामुहें छींकत आवै ॥३११॥

पुनर्यथा—(दोहा)

जल-बिहार-मिस भीर में, लै चुभकी इक बार ।
दह-भीतर मिलि परसपर, दोऊ करत बिहार ॥३१२॥

प्रोषित को लक्षण

व्याकुल होइ जो बिरह-बस, बसि बिदेस में कंत ।
ताही सों प्रोषित कहत, जे कोबिद बुधिवंत ॥३१३॥

प्रोषित को उदाहरण—(कवित्त)

साँझ के सलोने घन सबुज सुरंगन सों,
कैसे कै अनंग अंग-अंगनि सताउतौ ।

कहै 'पद्‌माकर' झकोर झिल्ली-सोरन को,
मोरन को महत न कोऊ मन ल्यावतौ ॥
काहू बिरही की कही मानि लेतौ जो पै दई,
जग में दई तो दयासागर कहावतौ।
पावस बनायो तौ न बिरह बनावतौ,
जौ बिरह बनायो तौ न पावस बनावतौ ॥३१४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तजि बिदेस सजि बेस ही, निज निकेत में जाइ।
कब समेटि भुज भेंटबी भामिनि हिये लगाइ ॥३१५॥

पुनर्यथा—

फिरि-फिरि सोचत पथिक यह, मेरो निरखि सनेह।
तज्यो गेह निज गेहपति, त्यों न तजै कहुँ देह ॥३१६॥

पुनर्यथा—

बिकल बटोही बिरह-बस, यहै रह्यो चित चाहि।
मिलै जु कहुँ पारस पर्‌यो, मुरकि मिलौं तौ ताहि ॥३१७॥

ऊपर तीन दोहन में तीनौ नायक बर्नन कर्‌यो अर्थात् पति,
उपपति, बैसिक।

अनभिज्ञ को लक्षण

बूझै जो न तियान के, ठान बिबिध बिलास।
सु अनभिज्ञ नायक कह्यो, वहै नायकाभास ॥३१८॥

अनभिज्ञ नायक को उदाहरण—(कवित्त)

नैनन हीं सैन करै बीरी मुख दैन करै,
लैन करै चुंबन पसारि प्रेम पाता है।
कहै 'पद्‌माकर' त्यों चातुरी चरित्र करै,
चित्त करै सौंहैं जो बिचित्र रतिराता है ॥

हाव करै भाव करै विविध बिभाव करै,
बूझै प्यौ न एते पै अबूझन को आता है।
ऐसो परबीनि को कियो जौ यह पूरुष तौ,
बीस-बिसे जानी महामूरुख बिधाता है ॥३१९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

करि उपाउ हारी जु मैं, सनमुख सैन बताइ।
समुझत प्यौ न इते हु पै, कहा कीजियतु, हाइ ! ॥३२०॥

आलंबन को लक्षण

जाहि जबहिं आलंबि के, उर उपजत रस-भाव।
आलंबन सु बिभाव कहि, बरनत सब कबिराव ॥३२१॥

शृंगार के आलंबन

आलंबन शृंगार के, कहे भेद समुझाइ।
सकल नायका नायकहि, लच्छन-लच्छ बनाइ ॥३२२॥

दर्शन के भेद

बरनत आलंबनहि में, दरसन चारि प्रकार।
श्रवन चित्र सुभ स्वप्न में, पुनि परतच्छ निहारि ॥३२३॥

दर्शन के लक्षण

इन चारिहु दरसनन के लच्छन, नाम प्रमान।
तिन के कहत उदाहरन, समुझहिं सबै सुजान ॥३२४॥

श्रवण-दर्शन को उदाहरण—(सवैया)

राधिका सों कहि आई जु तू सखि साँवरे की मृदु मूरति जैसी।
ता छिन तें 'पद्माकर' ताहि सुहात कछू न बिसूरति वैसी ॥
मानहु नीर-भरी घन की घटा आँखिन में रही आनि उनै-सी।
ऐसी भई सुनि कान्ह-कथा जु बिलोकहिगी तब होइगी कैसी ॥३२५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सुनत कहानी कान्ह की, तीय तजी कुल-कानि।
मिलन-काज लागी करन, दूतिन सों पहिचानि ॥३२६॥

चित्र-दर्शन को उदाहरण—(सवैया)

चित्र के मंदिर तें इक सुंदरी क्यों निकसै जिन्हैं नेह-नसा है।
त्यों 'पद्माकर' खोलि रही दृग बोलै न बोल अडोल दसा है॥
भृंगी-प्रसंग तें भृंग ही होत जु पै जग में जड़ कीट महा है।
मोहन-मीत को चित्र लखें भई चित्र ही सी तौ बिचित्र कहा है ॥३२७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

हरषि उठति फिरि-फिरि परखि, फिरि परखति चख लाइ।
मित्र-चित्रपट कों तिया, उर सों लेति लगाइ ॥३२८॥

स्वप्न-दर्शन को उदाहरण—(सवैया)

सूने सँकेत में सोंधे-सनी सपने में नई दुलही तू मिलाई।
हौं हू गयो 'पद्माकर' दौरि सो भौंहैं मरोरति सेज लौं आई॥
या मन की मन ही में रही जु समेटि तिया लै हिया सों लगाई।
आँखैं गईं खुलि सीबी सुनें सखी हाइ मैं नीबो न खोलन पाई ॥३२९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सुंदरि सपने में लख्यो, निसि में नंदकिसोर।
होत भोर लै दधि चली, पूछत सँकरी खोर ॥३३०॥

प्रत्यक्ष-दर्शन को उदाहरण—(सवैया)

आई भले हौं चली सखियान मैं पाई गोविंद के रूप की झाँको।
त्यों 'पद्माकर' हार दियो गृहकाज कहा अरु लाज कहाँ की॥
है नख तें सिख लौं मृदु माधुरी बाँकियै भौंहैं बिलोकनि बाँकी।
आज की या छबि देखि भटू अब देखिबे कों न रह्यो कछु बाकी ॥३३१

पुनर्यथा—(दोहा)

हौं लखि आई लखहुँगी, लखै न क्यों ब्रज-लोग ।
निसि-दिन साँचहु साँवरो, दुगुन देखिबे जोग ॥३३२॥

इति श्रीकूर्मवंशावतंसश्रीमन्महाराजाधिराजराजेन्द्रश्रीसवाईमहाराजजगतसिंहाज्ञया मथुरास्थायिमोहनलालभट्टात्मजकविपद्माकरविरचिते जगद्विनोदनाम्नि काव्ये शृङ्गारालम्बनविभावप्रकरणम् ।

अथ उद्दीपन-बिभाव

लक्षण—(दोहा)

जिनहिं बिलोकत ही, तुरत रस-उद्दीपन होत ।
उद्दीपन सु बिभाव है, कहत कबिन को गोत ॥३३३॥
सखा सखी दूती सु बन, उपबन षटऋतु पौन ।
उद्दीपनहि बिभाव में, बरनत कबि मतिभौन ॥३३४॥
चंद चाँदनी चंदन हु, पुहुप पराग समेत ।
यों ही और सिँगार सब, उद्दीपन के हेत ॥३३५॥
कहे जु नायक के सबै, प्रथमहि बिबिध प्रकार ।
अब बरनत हौं, तिनहिं के सचिव सखा जे चार ॥३३६॥

अथ सखा

पीठमर्द बिट चेट पुनि, बहुरि बिदूषक होइ ।
मोचै मान तियान को, पीठमर्द है सोइ ॥३३७॥

पीठमर्द को उदाहरण—(कवित्त)

घूमि देखौ धरकि धमारन की धूम देखौ,
भूमि देखौ भूमित छवावै छवी छवि कै ।
कहै 'पद्माकर' उमंग-रंग सींचि देखौ,
केसरि की कीच जो रह्यो मैं ग्वाल गवि कै ॥

पुनर्यथा—(दोहा)

उतन ग्वालि तू कित चली, ये उनये घनघोर ।
हौं आयौं लखि तुव घरे, पैठत कारो चोर ॥३४४॥

विदूषक को लक्षण

स्वाँग ठानि ठानै जु कछु, हाँसी बचन-बिनोद ।
कह्यो बिदूषक सो सखा, कबिन मानि मन मोद ॥३४५॥

विदूषक को उदाहरण—(सवैया)

फाग के द्यौस गोपालन ग्वालिनी कै इकठानि कियो मिसि काऊ।
त्यों 'पद्माकर' झोरि झमाइ सु दौरीं सबै हरि पै इकहाऊ ॥
ऐसे समै वहै भीत बिनोदी सु नेसुक नैन किये डरपाऊ ।
लै हर-मूसर ऊसर है कहूँ आयो तहाँ बनि कै बलदाऊ ॥३४६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कटि हलाइ हलकाइ कछु, अद्भुत ख्याल बनाइ ।
अस को जाहि न फाग में, परगट दियो हँसाइ ॥३४७॥

इति सखा ।

अथ सखी—(दोहा)

जिन सों नायक-नायिका, राखैं कछु न दुराव ।
सखी कहावैं ते सुघर, साँचो सरल सुभाव ॥३४८॥
काज सखिन के चारि ये, मंडन सिक्षादान ।
उपालंभ परिहास पुनि, बरनत सुकबि सुजान ॥३४९॥
मंडन तियहि सिँगारिबो, सिक्षा बिनय-बिलास ।
उपालंभ सो उरहनो, हँसी करब परिहास ॥३५०॥

मंडन को उदाहरण—(सवैया)

माँग सँवारि सिँगारि सुबारनि बेनी गुही जु छवानि लौं छावै ।
त्यों 'पद्माकर' या बिधि और हू साजि सिँगार जु स्याम कों भावै ॥

रीझै सखी लखि राधिका को रँग, जा अँग जो गहनो पहिरावै।
होत यों भूषित-भूषन गात ज्यों डाँकत ज्योति जवाहिर पावै॥३५१

पुनर्यथा—(दोहा)

कहा करौं जौ आँगुरिन, अनी घनी चुभि जाइ।
अनियारे चख लखि, सखी कजरा देत डराइ॥३५२॥

शिक्षा को उदाहरण—(सवैया)

झाँकति है का झरोखे लगी लग लागिबे कों इहाँ झेल नहीं फिर।
त्यों 'पद्माकर' तीखे कटाछन की सर कों सर-सेल नहीं फिर॥
नैनन ही की घलाघल के घन घावन कों कछु तेल नहीं फिर।
प्रीति-पयोनिधि में धँसि कै हँसि कै कढ़िबो हँसी-खेल नहीं फिर॥३५३

पुनर्यथा—(दोहा)

बहति लाज बूड़त सुमन, भ्रमत नैन तेहि ठाँव।
नेह-नदी की धार में, तू न दीजियो पाँव॥३५४॥

उपालंभन को उदाहरण—(कवित्त)

ब्रज बहि जाइ ना कहूँ यों आइ आँखिन तें,
उमगि अनोखी घटा बरषति नेह की।
कहै 'पद्माकर' चलावै खान-पान की को,
प्रानन परी है आनि दहसति देह की॥
चाहिए न ऐसी बृषभान की किसोरी तोहि,
देइबो दगा जो ठीक ठाकुर सनेह की।
गोकुल की कुल की न गैल की गोपाले सुधि,
गोरस की रस की न गोवन न गेह की॥३५५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कौन भाँति आये निरखि, तुम तिहि नंदकिसोर।
भरभरात भामिनि परी, घरघरात घनघोर॥३५६॥

परिहास को उदाहरण—(सवैया)

आई भले द्रुत चाल तू चातुर आतुर मोहन के मन भाई।
सौतिन की सरि कों 'पद्माकर' पाई कहाँ धौं इती चतुराई॥
मैं न सिखाई, सिखाई सु मैनहि यों कहि रैन की बात जताई।
ऊपर ग्वालि गुपाल तरे सु हरे हँसि यों तसबीर दिखाई॥३५७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

को तेरो यह साँवरो, यों बूझ्यो सखि आइ।
मुख तें कही न बात कछु, रही सुमुखि मुख नाइ॥३५८॥

इति सखी।

अथ दूती

लक्षण—(दोहा)

दूतपने में ही सदा, जो तिय परम प्रबीनि।
उत्तम मध्यम अधम हैं, सो दूती बिधि तीनि॥३५९॥

उत्तमा दूती को लक्षण

हरै सोच उचरै बचन, मधुर-मधुर हित मानि।
सो उत्तम दूती कही, रस-ग्रंथन में जानि॥३६०॥

उत्तमा दूती को उदाहरण—(कवित्त)

गोकुल की गलिन-गलीन यह फैली बात,
कान्हैं नंदरानी बृषभानु-भौन ब्याहतीं।
कहै 'पद्माकर' यहाँई त्यों तिहारो चलै,
ब्याह को चलन, यहै साँवरो सराहतीं॥
सोचति कहा हौ कहा करिहैं चवाइन ये,
आनँद की अवली न काहे अवगाहतीं।
प्यारो उपपति तें सु होत अनुकूल,
तुम प्यारी परकीया तें स्वकीया होन चाहतीं॥३६१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कालिह कलिंदी के निकट, निरखि रहे हो जाहि।
आई खेलन फाग वह, तुम ही सों चित चाहि ॥३६२॥

मध्यमा दूती को लक्षण

कछुक मधुर कछु-कछु परुष, कहै बचन जो आइ ॥
ताही कों कबि कहत हैं, मध्यम दूती गाइ ॥३६३॥

मध्यमा दूती को उदाहरण—(सवैया)

बैन सुधा-से सुधा-सी हँसी बसुधा में सुधा की सटा करती हौ।
त्यों 'पद्माकर' बारहि बार सु बार बगारि लटा करती हौ ॥
बीर बिचारे बटोहिन पै बिन काज ही तौ यों छटा करती हौ।
बिज्जु-छटा-सी अटा पै चढ़ी सु कटाछनि घालि कटा करती हौ ॥३६४

पुनर्यथा—(दोहा)

कुंजभवन लौं भावते, कैसे सकहि सु आय।
जावक-रँग-भारनि भटू, मग में धरति न पाय ॥३६५॥

मध्यमा दूती को लक्षण

कै पिय सों कै तियहि सों, कहै परुष ही बैन।
अधमा दूती कहत हैं, ताही सों मति-ऐन ॥३६६॥

अधमा को उदाहरण—(सवैया)

ऐहै न फेरि गई जो निसा तनु-यौबन है धन की परछाहीं।
त्यों 'पद्माकर' क्यों न मिलै उठि यों निबहैगो न नेह सदा हीं ॥
कौन सयान जो कान्ह सुजान सों ठानि गुमान रही मन माहीं।
एक जु कंज-कली न खिली तौ कहा कहूँ भौंर कों ठौर है नाहीं ? ॥३६७

पुनर्यथा—(दोहा)

कै गुमान गुन-रूप के, तैं न ठान गुनमान।
मनमोहन चित चढ़ि रहीं, तो-सी किती न आन ॥३६

दूती के काज

द्वै दूती के काज ये, बिरह-निवेदन एक।
संघट्टन दूजो कहो, सुकबिन सहित बिबेक ॥३६९॥
बिरहबिथानि सुनाइबो, बिरह-निवेदन' जानि।
दोउन कों जु मिलाइबो, सो संघट्टन मानि ॥३७०॥

बिरह-निवेदन को उदाहरण—(कवित्त)

आई तजि हौं तो ताहि तरनि-तनूजा-तीर,
ताकि-ताकि तारापति तरफति ताती-सा।
कहै 'पद्माकर' घरीक ही में घनस्याम,
काम तौ कतलबाज कुंजनि है काती-सो ॥
याही छिन वाही सों न मोहन मिलौगे
जो पै, लगनि लगाइ एती अगिनि अवाती-सी।
रावरी दुहाई तो बुझाई ना बुझैगी फेरि,
नेह-भरी नागरी की देह दिया-बाती-सी ॥३७१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

को जियावतो आजु लौं, बाढ़े बिरह - बलाय।
होती जु पै न तोहि-सी, ता की नेक सहाय ॥३७२॥

संघट्टन को उदाहरण—(कवित्त)

तासन की गिलमैं गलीचा मखतूलन के,
झरपै झुमाऊ रही झूमि रंग-द्वारा मैं।
कहै 'पद्माकर' सुदीप मनि-मालन की,
लालन की सेज फूल-जालन सँवारी मैं ॥
जैसे-तैसे नित छल-बल सों छबीली वह,
छिनक छबीले कों मिलाइ दई प्यारी मैं।

छूटि भाजी कर तें सु करि कै बिचित्र गति,
चित्र-कैसी पूतरी न पाई चित्रसारी मैं ॥३७३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

गोरी कों जु गोपाल कों, होरी के मिस ल्याइ ।
बिजन साँकरी खोरि में, दोऊ दिये मिलाइ ॥३७४॥

स्वयंदूती को लक्षण

आपुहि अपनो दूतपन, करै जु अपने काज ।
ताहि स्वयंदूती कहत, ग्रंथन में कबिराज ॥३७५॥

स्वयंदूती को उदाहरण—(सवैया)

रूसि कहूँ कढ़ि माली गयो गई ताहि मनावन सासु उताली ।
त्यों 'पद्माकर' न्हान नदी जे हुतीं सजनी सँग नाचनवाली ॥
मंजु महाछबि की कब की यह नीकी निकुंज परी सब खाली ।
हौं यहि बाग की मालिनि हौं, इत आये भले तुम हो बनमाली ॥३७६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मोहो सों किन भेंटि लै, जौ लौं मिलै न बाम ।
सीतभीत तेरो हियो, मेरो हियो हमाम ॥३७७॥

इति दूती ।

अथ षट्ऋतु-वर्णन

बसंत—(कवित्त)

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है ।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौन हू में,
पानन में पिक में पलासन पतंग है ॥
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत है ।

बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है ॥३७८॥

पुनर्यथा—

और भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर-भीर,
और डौर झौरन में बौरन के ह्वै गये।
कहै 'पद्माकर' सु औरै भाँति गलियान,
छलिया छबीले छैल औरै छबि छ्वै गये।
औरै भाँति बिहँग-समाज में आवाज होति,
ऐसे ऋतुराज के न आज दिन द्वै गये।
औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रंग,
औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गये ॥३७९॥

पुनर्यथा—

पात बिन कीन्हे ऐसी भाँति गन बेलिन के,
परत न चीन्हे जे ये लरजत लुंज हैं।
कहै 'पद्माकर' बिसासी या बसंत के,
सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं॥
ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो भले
हरि सों, हमारे ह्याँ न फूले बन-कुंज हैं।
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं ॥३८०॥

पुनर्यथा—(सवैया)

ए ब्रजचंद चलौ किन वाँ ब्रज लूकैं बसंत की ऊकन लागीं।
त्यों 'पद्माकर' पेखो पलासन पावक-सी मनो फूकन लागीं॥
वै ब्रजवारी बिचारी बधू बनवारी-हिये लौं सु हूकन लागीं।
कारी कुरूप कसाइनैं ये सु कुहू-कुहू कैलिया कूकन लागीं ॥३८१॥

ग्रीष्म—(कवित्त)

फहरै फुहार-नीर, नहर नदी-सी बहै,
छहरैं छबीन छाम छीटिन की छाटी हैं।
कहै 'पद्माकर' त्यों जेठ की जलाकैं तहाँ,
पावैं क्यों प्रबेस बेस बेलिन की बाटी हैं॥
बार हू दरीन बीच बार हू तरफ तैसी,
बरफ बिछाई ता पै सीतल-सु-पाटी हैं।
गजक अँगूर को अँगूर सों उचौहैं कुच,
आसव अँगूर को अँगूर ही की टाटी हैं॥३८२॥

पावस—

मल्लिकन मंजुल मलिंद मतवारे मिले,
मंद-मंद मारुत मुहीम मनसा की है।
कहै 'पद्माकर' त्यों नदन नदीन नित,
नागर नबेलिन की नजर नसा की है॥
दौरत दरेरौ देत दादुर सु दुंदै दीह,
दामिनी दमकंत दिसान में दसा की है।
बद्दलनि बुंदनि बिलोकौ बगुलान बाग,
बंगलान बेलिन बहार बरषा की है॥३८३॥

पुनर्यथा—

चंचला चमाकैं चहूँ ओरन तें चाह-भरी,
चरजि गई ती फेरि चरजन लागी री।
कहै 'पद्माकर' लवंगन की लोनी लता,
लरजि गई ती फेरि लरजन लागी री॥

कैसे धरौं धीर बीर त्रिविध समीरैं तन,
तरजि गई ती फेरि तरजन लागी री।
घुमड़ि घमंड घटा घन की घनेरी अबै,
गरजि गई तो फेरि गरजन लागी री ॥३८४॥

पुनर्यथा—

बरसत मेह नेह सरसत अंग-अंग,
झरसत देह जैसे जरत जवासो है।
कहै 'पद्माकर' कलिंदी के कदंबन पै,
मधुपनि कीन्हो आइ महत मवासो है ॥
ऊधो यह ऊधम जताइ दीजौ मोहन कों,
ब्रज को सुबासो भयो अगिन-अवासो है।
पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो,
काहू बिथित बियोगिनी के प्रानन को प्यासो है॥३८५॥

शरद्—

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
बृंदाबन बीथिन बहार बंसीबट पै।
कहै 'पद्माकर' अखंड रासमंडल पै,
मंडित उमंडि महा कालिंदी के तट पै ॥
छिति पर छान पर छाजत छतान पर,
ललित लतान पर लाड़िली के लट पै।
आई भली छाई यह सरद-जुन्हाई, जिहि
पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकुट पै ॥३८६॥

पुनर्यथा—

खनक चुरीन की त्यों ठनक मृदंगन की,
रुनुक-झुनुक सुर नूपुर के जाल को।

कहै 'पद्माकर' त्यों बाँसुरी की धुनि मिलि,
रह्यो बँधि सरस सनाको एक ताल को ॥
देखते बनत पै न कहत बनै री कछू,
बिबिध बिलास यों हुलास यह ख्याल को ।
चंद छबिरास चाँदनी को परकास, राधिका
को मंदहास रासमंडल गोपाल को ॥३८७॥

हेमंत—

अगर की धूप मृगमद की सुगंध बर,
बसन बिसाल जाल अंग ढाँकियतु है ।
कहै 'पदमाकर' सु पौन को न गौन जहाँ,
ऐसे भौन उमँगि उमंगि छाकियतु है ॥
भोग औ सँयोग हित सुरत हिमंत ही में,
एते और सुखद सुहाय बाकियतु है ।
तान की तरंग तरुनापन तरनि-तेज,
तेल तूल तरुनि तमोल ताकियतु है ॥३८८॥

शिशिर—

गुलगुली गिलमैं गलीचा हैं गुनीजन हैं,
चाँदनी हैं चिक हैं चिरागन की माला हैं ।
कहै 'पदमाकर' त्यों गजक गिजा हैं सजी,
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं ॥
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं,
जिन के अधीन एते उदित मसाला हैं ।
तान तुक ताला हैं बिनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं दुसाला हैं बिसाला चित्रसाला हैं ॥३८९॥

इति श्रीकूर्मवंशावतंसश्रीमन्महाराजाधिराजराजेन्द्रश्रीसवाई-महाराजजगतसिंहाज्ञया मथुरास्थायिकविपद्माकरविरचितजगद्विनो-दनामकाव्ये आलंबनविभावप्रकरणम् ।

अथ अनुभाव

लक्षण—(दोहा)

जिनहीं तें रति-भाव को, चित में अनुभव होत ।
ते अनुभव शृंगार के, बरनत हैं कविगोत ॥३९०॥
सात्विक भाव स्वभाव-धृत, आनँद अंग बिकास ।
इनहीं तें रति-भाव को, परगट होत बिलास ॥३९१॥

अनुभाव को उदाहरण—(कवित्त)

गोरस को लूटिबो न छूटिबो छरा को गनै,
टूटिबो गनै न कछू मोतिन के माल को ।
कहै 'पद्माकर' गुवालिनि गुनीली हेरि,
हरषै हँसै यों कर झूठे-झूठे ख्याल को ॥
हाँ करति ना करति नेह की निसा करति,
साँकरी गली मे रंग राखति रसाल को ।
दीबो दधिदान को सु कैसे ताहि भावत है,
जाहि मन भायो झारि झगरो गोपाल को ॥३९२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मृदु मुसकाइ उठाइ भुज, छन घूँघुट उलटारि ।
को धनि ऐसो जाहि तू, इकटक रही निहारि ॥३९३॥

अथ सात्त्विक भाव

स्तंभ स्वेद रोमांच कहि, बहुरि कहत स्वरभंग ।
कंप बरन-वैवर्न्य पुनि, आँसू प्रलय-प्रसंग ॥३९४॥

अंतरगत अनुभाव में, आठहु सात्विक भाव।
जृंभा नवम बखानहीं, जे कबीन के राव ॥३९५॥

स्तंभ को लक्षण

हरष लाज भय आदि तें, जबै अंग थकि जात।
स्तंभ कहत ता सों सबै, रसग्रंथनि सरसात ॥३९६॥

स्तंभ को उदाहरण—(सवैया)

या अनुराग की फाग लखौ जहँ रागती राग किसोर-किसोरी।
त्यों 'पद्माकर' घाली घली फिरि लाल-ही-लाल गुलाल की झोरी॥
जैसी कि तैसो रही पिचकी कर काहू न केसरि-रंग में बोरी।
गोरिन के रँग भीजि गो साँवरो साँवरे के रँग भीजि गे गोरी॥३९७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

पियहि परखि तिय थकि रही, बूझेउ सखिन निहारि।
चलति क्यों न ?, क्यों चलहु मग परत न पग रँग-भार॥३९८॥

स्वेद को लक्षण

रोष लाज डर हरष श्रम, इनहीं तें जो होत।
अंग-अंग जाहिर सलिल, स्वेद कहत कवि-गोत ॥३९९॥

स्वेद को उदाहरण—(कवित्त)

ए री बलबीर के अहीरन की भीरन में,
सिमिटि समीरन अबीर को अटा भयो।
कहै 'पद्माकर' मनोज मन मौजन ही,
मैन के हटा में पुनि प्रेम को पटा भयो॥
नेही नंदलाल की गुलाल की घलाघल में,
राजत पसीजि तन घन की घटा भयो।

चोरै चखचोटन चलाक चित्त चोरी भयो,
लूटि गई लाज कुलकानि को कटा भयो ॥४००॥

पुनर्यथा—(दोहा)

यों श्रम-सीकर सुमुख तें, परत कुचन पर बेस।
उदित चंद्र मुकताछ्तनि, पूजत मनहु महेस ॥४०१॥

रोमांच को लक्षण

सीत भीति हरषादि तें, उठै रोम समुहाय।
ताहि कहत रोमांच हैं, सुकबिन के समुदाय ॥४०२॥

रोमांच को उदाहरण—(सवैया)

कैधौं डरी तू खरी जलजंतु तें कै अँगभार सिवार भयो है।
क नख तें सिख लौं 'पदमाकर' जाहिरै झार सिंगार भयो है॥
कैधौं कछू तोहि सीतबिकार है ताही को या उदगार भयो है।
कैधौं सुबारि-बिहारहि में तनु तेरो कदंब को हार भयो है ॥४०३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

पुलकित गात अन्हात यों, अरी खरी छबि देत।
उठे अंकुरे प्रेम के, मनहु हेम के खेत ॥४०४॥

स्वरभंग को लक्षण

हरष भीत मद क्रोध तें, बचन भाँति ही और।
होत जहाँ, स्वरभंग को बरनत कबि-सिरमौर ॥४०५॥

स्वरभंग को उदाहरण—(सवैया)

जाति हुती निज गोकुल कों हरि आयो तहाँ लखि कै मग सूना।
ता सों कह्यो 'पदमाकर' यों अरे साँवरे बावरे तैं हमैं छू ना॥
आज धौं कैसी भई सजनी उत वा बिध बोल कढ्योई कहूँ ना।
आनि लगायो हियो सों हियो भरि आयो गरो कहि आयो कछू ना ४०६

पुनर्यथा—(दोहा)

हौं जानत जो नाह तुम, बोलत अध-अखरान ।
संग लगे कहुँ और के, करि आये मदपान ॥४०७॥

कंप को लक्षण

हरषहि तें कै कोप तें, कै भ्रम भय तें गात ।
थरथरात ता सों कहत, कंप सुमति सरसात ॥४०८॥

कंप को उदाहरण—(सवैया)

साजि सिँगारनि सेज पै पारि भई मिस ही मिस ओट जिठानी ।
त्यों 'पद्माकर' आइ गो कंत इकंत जबै निज तंत में जानी ॥
सो लखि सुंदरि सुंदर सेज तें यों सरकी थिरकी थहरानी ।
बात के लागे नहीं ठहरात है ज्यों जलजात के पात पै पानी ॥४०९

पुनर्यथा—(दोहा)

थरथरात उर, कर कँपत, फरकत अधर सुरंग ।
फरकि पीउ पलकनि प्रगट, पीक-लीक को ढंग ॥४१०॥

वैवर्ण्य को लक्षण

मोहित तें कै क्रोध तें, कै भय ही तें जान ।
बरन होत जहँ और बिधि, सो वैवर्न्य बखान ॥४११॥

वैवर्ण्य को उदाहरण—(सवैया)

सापने हूँ न लख्यो निसि में रतिभौन तें गौन कहूँ निज पी को ।
त्यों 'पद्माकर' सौति-सँजोगनि रोग भयो अनभावती-जी को ॥
हारन सों हहरात हियो मुकता सियरात सु बेसर ही को ।
भावते के उर लागी जऊ तऊ भावती को मुख ह्वै गयो फीको ॥४१२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कहि न सकत कछु लाज तें, अकथ आपनी बात ।
ज्यों-ज्यों निसि नियरात है, त्यों-त्यों तिय पियरात ॥४१३॥

अश्रु को लक्षण

हरष रोष अरु सोक भय, धूमादिक तें होत।
प्रगट नीर अँखियान में, अश्रु कहत कबि-गोत ॥४१४॥

अश्रु को उदाहरण—(कवित्त)

भेद बिन जाने एती बेदन बिसाहिबे कों,
आज हौं गई ही बाट बंसीबटवारे की।
कहै 'पद्माकर' लटू है लोट-पोट भई,
चित्त में चुभी जो चोट चाय चटवारे की॥
बावरी-लौं बूझति बिलोकति कहा तू,
बीर जाने कहा कोऊ पीर प्रेम-हटवारे की।
उमड़ि-उमड़ि बहै बरखै सु आँखिन है,
घट में बसी जो घटा पीतपटवारे की ॥४१५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

आँखिन तें आँसू उमड़ि, परत कुचन पर आन।
जनु गिरीस के सीस पर डारत झख मुकतान ॥४१६॥

प्रलय को लक्षण

तन-मन की न सँभार जहँ, रहै जीव-गन गोय।
सो सिँगार-रस में, प्रलय बरनत कबि सब कोय ॥४१७॥

प्रलय को उदाहरण—(सवैया)

ये नँदगाँव तें आये इहाँ उत आई सुता वह कौन हू ग्वाल की।
त्यों 'पद्माकर' होत जुराजुरी दोउन फाग करी यहि ख्याल की॥
डीठि चली उन की इन पै इन की उन पै चली मूठि उताल की।
डीठि-सी डीठि लगी उन को इन के लगी मूठि-सी मूठि गुलाल की।४१८

पुनर्यथा—(दोहा)

दै चख-चोट अँगोट मग, तजी युवति बन माहिं।
खरी बिकल कब की परी, सुधि सरीर की नाहिं ॥४१९॥

जंभा को लक्षण

पिय-बिछोह संमोह कै, आलस ही अवगाहि।
छिन-छिन बदन बिकासिबो, जृंभा कहिये ताहि ॥४२०॥

जंभा को उदाहरण—(सवैया)

आरस सों रस सों 'पद्माकर' चौंकि परे चख चुंबन के किये।
पीक-भरी पलकैं झलकैं अलकैं झलकैं छबि छूटि छटा लिये॥
सो सुख भाखि सकै अब को रिसकै कसकै मसकै छतिया छिये।
राति की जागी प्रभात उठी अँगरात जँभात लजात लगी हिये॥४२१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

दर-दर दौरति सदन-दुति, समसुगंध सरसाति।
लखत क्यों न आलस-भरी, परी तिया जमुहाति ॥४२२॥

इति सात्त्विकभाववर्णनम्।

अथ हाव

लक्षण—(दोहा)

अनुभावहि में जानिये, लीलादिक जे हाव।
ते सँयोग शृंगार में, बरनत सब कबिराव ॥४२३॥
प्रगट स्वभाव तियान के, निज सिँगार के काज।
हाव जानिये ते सबै, यों भाषत कबिराज ॥४२४॥
लीला प्रथम विलास बिय, पुनि बिच्छित्ति बखान।
बिभ्रम किलकिंचित ललित, मोट्टायित पुनि जान ॥४२५॥
बिब्बोक हु पुनि बिहृत गनि, बहुरि कुट्टमित गाव।
रसग्रंथन में ये दसहु, हाव कहत कबिराव ॥४२६॥

लीला हाव को लक्षण

पिय तिय को तिय पीव को, धरैं जु भूषन चीर।
लीला हाव बखानहीं, ताही को कबि धीर ॥४२७॥

लीला हाव को उदाहरण—(कवित्त)

रूप रचि गोपी को गोबिंद गो तहाँई जहाँ,
कान्ह बनि बैठी कोऊ गोप की कुमारी है।
कहै 'पद्माकर' यों ऊलट कहे को कहा,
कसकै कन्हैया कर मसकै जु प्यारी है॥
नारी तें न होत नर, नर तें न होत नारी,
बिधि के करे हूँ कहूँ काहू ना निहारी है।
काम-करता की करतूत या निहारी जहाँ,
नारी नर होत नर होत लख्यो नारी है ॥४२८॥

पुनर्यथा—(सवैया)

ये इत घूँघट घालि चलैं उत बाजत बाँसुरी की धुनि खोलैं।
त्यों 'पद्माकर' ये इतै गोरस लै निकसैं यों चुकावत मोलैं॥
प्रेम के पंथ सु प्रीति की पैठ में पैठत ही है दसा यह जो लैं।
राधामयी भई स्याम की सूरति स्याममयी भई राधिका डोलैं॥४२९

पुनर्यथा—(दोहा)

तिय बैठी पिय को पहिरि, भूषन बसन बिसाल।
समुझि परत नहिं सखिन को, को तिय को नँदलाल ॥४३०॥

बिलास हाव को लक्षण

जो तिय पियहि रिझावई, प्रगट करे बहु भाव।
सुकबि बिचारि बखानहीं, सो बिलास निधि हाव ॥४३१॥

बिलास हाव को उदाहरण—(कवित्त)

सोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारो,
कौन हू सुमनवारी को नहिं निहारी है।
कहै 'पद्माकर' त्यों बाँधनू बसनवारी,
वा ब्रजबसनवारी ह्यो-हरनहारी है॥
सुबरनवारी रूप सुबरन वारी सजै,
सुबरनवारी काम-कर की सँवारो है॥
सीकरनवारी सेद-सीकरनवारी रति
सी करनवारी सो बसीकरन वारी है ॥४३२॥

पुनर्यथा—(सवैया)

आई हो खेलन फाग इहाँ बृषभानपुरी तें सखी सँग लीने।
त्यों 'पद्माकर' गावतीं गीत रिझावतीं भाव बताइ नवीने॥
कंचन की पिचकी कर में लिये केसरि के रँग सों अँग भीने।
छोटी-सी छाती छुटी अलकैं अति बैस की छोटी बड़ी परबीने ॥४३३

पुनर्यथा—(दोहा)

समुझि स्याम को सामुहे, कर तें बार बगार।
मनमोहन-मन हरन कों, लगी करन शृंगार ॥४३४॥

बिच्छित्ति हाव को लक्षण

तनक सिँगारहि में जहाँ, तरुनि महा छबि देत।
सोई बिच्छित्ति हाव को, बरनत बुद्धि-निकेत ॥४३५॥

बिच्छित्ति हाव को उदाहरण—(सवैया)

मानो मयंकहि के पर्यंक निसंक लसै सुत बंक मही को।
त्यों 'पद्माकर' जागि रह्यो जनु भाग हिये अनुराग जु पी को॥
भूषन भार सिँगारन सों सजि सौतिन को जु करे मुख फीको।
ज्योति को जाल बिसाल महा तिय भाल पै लाल गुलाल को टीको ४३६

पुनर्यथा—(दोहा)

जनु मलिंद अरविंद-बिच, बस्यो चाहि मकरंद ।
इमि इक मृगमद-बिंदु सों, किये सुबस ब्रजचंद ॥४३७॥

विभ्रम हाव को लक्षण

होत काज कछु को कछू, हरबराइ जिहि ठौर ।
विभ्रम ता सों कहत हैं, हाव सबै सिरमौर ॥४३८॥

विभ्रम हाव को उदाहरण—(सवैया)

बछरै खरी प्याव गऊ तिहि को 'पदमाकर' को मन लावत है ।
तिय जानि गिरैया गही बनमाल सु ऐंचे लला इँच्यो आवत है ॥
उलटी करि दोहनी मोहनी की अँगुरी थन जानि कै दावत है ।
दुहिबो औ दुहाइबो दोउन को सखि देखत ही बनि आवत है ॥४३९

पुनर्यथा—(दोहा)

पहिरि कंठ-बिच किंकिनी, कस्यो कमर-बिच हार ।
हरबराइ देखन लगी, कब तें नंदकुमार ॥४४०॥

किलकिंचित हाव को लक्षण

होत जहाँ इकबारही, त्रास हास रस रोष ।
ता सों किलकिंचित कहत, हाव सबै निर्दोष ॥४४१॥

किलकिंचित हाव को उदाहरण—(सवैया)

फागुन में मधुपान-समै 'पदमाकर' आइ गे स्याम सँघाती ।
अंचल ऐंचि, उँचाय भुजा भरै, भूमि गुलाल की ख्याल सुहाती ॥
झूठिहु दै झझकाइ तहाँ तिय झाँकी झुकी झझकी मदमाती ।
रूसि रही घरी आधिक लौं तिय झारत अंग निहारत छाती ॥४४२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

चढ़त भौंह धरकत हियो, हरषत मुख मुसक्यात ।
मदछाकी तिय कों जु पिय, छबि छकि परसत गात ॥४४३॥

ललित हाव को लक्षण

जहँ अंगन की छबि सरस, बरनत चलन चितौन ।
ललित हाव ता कों कहत, जे कबि कबिता-भौन ॥४४४॥

ललित हाव को उदाहरण—(कवित्त)

सजि ब्रजचंद पै चली यों मुखचंद जा को,
चंद चाँदनी को मुख मंद-सो करत जात ।
कहै 'पद्माकर' त्यों सहज सुगंध ही के,
पुंज बन-कुंजन में कंज-से भरत जात ॥
धरत जहाँई जहाँ पग है पियारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही के माठ-से ढरत जात ।
बारन तें हीरा सेत सारी की किनारन तें,
हारन तें मुकता हजारन झरत जात ॥४४५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सजि सिँगार सुकुमार तिय, कुटिल सुहगनि दराज ।
लखहु नाह आवत चली, तुमहि मिलन तकि आज ॥४४६॥

मोट्टायित हाव को लक्षण

सुनत भावते की कथा, भाव प्रगट जहँ होत ।
मोट्टायित ता सों कहैं, हाव कबिन के गोत ॥४४७॥

मोट्टायित हाव को उदाहरण—(सवैया)

रूप दुहूँ को दुहून सुन्यो सु रहैं तब तें मनो संग सदा हीं ।
ध्यान में दोऊ दुहून लखैं हरषैं अंग-अंग अनंग उछाहीं ॥
मोहि-रहे कब के यों दुहूँ 'पद्माकर' और कछू सुधि नाहीं ।
मोहन को मन मोहनी में बस्यो मोहनी को मन मोहन माहीं ॥४४८

पुनर्यथा—(दोहा)

बसीकरन जब तें सुन्यो, स्याम तिहारो नाम ।
दृगनि मूँदि मोहित भई, पुलकि पसीजति बाम ॥४४९॥

बिब्बोक हाव को लक्षण

करै निरादर ईठ को, निज गुमान गहि बाम ।
कहत हाव बिब्बोक वहु, जे कबि मति-अभिराम ॥४५०॥

बिब्बोक हाव को उदाहरण—(सवैया)

केसरि-रंग महावर-से सरसै रस-रंग अनंग-चमू के ।
धूम धमारन को 'पद्‌माकर' छाइ अकास अबीर के मूके ॥
फाग यों लाड़िली को तिहि में तुम्हैं लाज न लागति गोप कहूँ के ।
छैल भये छतियाँ छिरकौ फिरौ कामरी ओढ़े गुलाल के ढूके ॥४५१

पुनर्यथा—(दोहा)

रहौ देखि दृग दै कहा, तुहि न लाज कछु छूत ।
मैं बेटी बृषभान की, तू अहीर को पूत ॥४५२॥

विहृत हाव को लक्षण

लाजनि बोलि सकै नहीं, पियहि मिले हू नारि ।
बिहृत हाव ता सों सबै, कबिजन कहत बिचारि ॥४५३॥

विहृत हाव को उदाहरण—(सवैया)

सुंदरि को मनिमंदिर में लखि आये गोबिंद बने बड़भागे ।
आनन-ओप सुधाकर-सी 'पद्‌माकर' जोबन-ज्योति के जागे ॥
औचक ऐंचत अंचल के पुलकी अँग-अंगहि यों अनुरागे ।
मैन के राज में बोलि सकी न भटू ब्रजराज सों लाज के आगे ॥४५४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

यह न बात आछी कछू, लहि यौवन-परगास ।
लाजहि तें चुप ह्वै रहति, जो तू पिय के पास ॥४५५॥

कुट्टमित हाव को लक्षण

तन मर्दत पिय के तिया, दरसावत झुठ रोष।
ताहि कुट्टमित कहत हैं, भाव सुकवि निर्दोष ॥४५६॥

कुट्टमित हाव को लक्षण—(कवित्त)

अंचल के ऐंचे चल करती दृगंचल कों,
चंचला तें चंचल चले न भजि द्वारे को।
कहै 'पद्माकर' परै-सी चौंकि चुंबन में,
छलनि छुपावै कुच-कुंभनि किनारे को॥
छाती के छुये पै परै राती-सी रिसाइ,
गलबाहीं के किये पै नाहिं-नाहिंयै उचारे को।
ही करति सीतल तमासे तुंग ती करति,
सी करति रति में बसी करति प्यारे को ॥४५७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कर ऐंचत आवति इँचो, तिय आपुहि पिय-ओर।
झूठिहु रूसि रहै छिनक, छुवत छरा को छोर ॥४५८॥

हेला हाव को लक्षण

दै जु ढिठाई नाह-सँग, प्रगटै विविध विलास।
कहत ग्यारहों हाव सो, हेला नाम प्रकास ॥४५९॥

हेला हाव को उदाहरण—(सवैया)

फाग के भीर अभीरन में गहि गोविँदैं लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाइ अबीर की झोरी॥
छीन पितंमर कंमर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी॥
नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिरि आइयो खेलन होरी ॥४६०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

हर बिरंचि नारद निगम, जाको लहत न पार ।
ता हरि कों गहि गोपिका, गरबि गुहावत बार ।।४६१।।

बोधक हाव को लक्षण

ठानि क्रिया कछु तिय, पुरुष बोधन करै जु भाव ।
रस-ग्रंथन में कहत हैं, ता सों बोधक हाव ।।४६२।।

बोधक हाव को उदाहरण—(सवैया)

दोऊ अटान चढ़े 'पद्माकर' देखे दुहूँ को दुवौ छबि छाई ।
त्यों ब्रजबाल गोपाल तहाँ बनमाल तमालहि की दरसाई ।।
चंदमुखी चतुराई करी तब ऐसी कछू अपने मन भाई ।
अंचल ऐंचि उरोजन तें नँदलाल कों मालती-माल दिखाई ।।४६३।।

पुनर्यथा—(दोहा)

निरखि रहे निधिबन-तरफ, नागर नंदकुमार ।
तोरि हीर को हार तिय, लगी बगारन बार ।।४६४।।

इति श्रीकूर्मवंशावतंसश्रीमन्महाराजाधिराजराजेन्द्रश्रीसवाई महाराजजगतसिंहाज्ञया मथुरास्थायिमोहनलालभट्टात्मजकवि पद्माकरविरचितजगद्विनोदनामकाव्येऽनुभावप्रकरणम् ।

अथ संचारी-भाव-वर्णन

(दोहा)

थाई भावन कों जिते, अभिमुख रहैं सिताव ।
जे नव रस में संचरैं, ते संचारी भाव ।।४६५।।
थाई भावन में रहत, या बिधि प्रगटि बिलात ।
ज्यों तरंग दरियाव में, उठि-उठि तितहि समात ।।४६६।।

थिर ह्वै थाई भाव, तब परिपूरन रस होत।
थिर न रहत रसरूप लौं, संचारिन को गोत ॥४६७॥
थाई संचारिकन को, है इतनोई भेद।
संचारिन के कहत हैं, तैंतिस नामनि बेद ॥४६८॥

(कवित्त)

कहि निरबेद ग्लानि संका त्यों असूया श्रम,
मद धृति आलस बिषाद मति मानिये।
चिंता मोह सुपन बिबोध स्मृति अमरख,
गर्ब उतसुकता सु अवहित्थ ठानिये ॥
दीनता हरष व्रीड़ा उग्रता सु निद्रा व्याधि,
मरन अपसमार आवेग हु आनिये।
त्रास उनमाद पुनि जड़ता चपलताई,
तेंतिसो बितर्क नाम याही बिधि जानिये ॥४६९॥

(दोहा)

या बिधि संचारी सबै, बरनत हैं कबि लोग।
जे जेहि रस में संचरैं, ते तहँ कहिबे जोग ॥४७०॥

निर्वेद को लक्षण

उर उपजै कछु खेद लहि, बिपति ईरषाज्ञान।
ताही तें निज निदरिबो, सो निरबेद बखान ॥४७१॥
अति उसास अरु दीनता, बिबरन अश्रु-निपात।
निरबेद हु तें होत हैं, ये सुभाव निज गात ॥४७२॥

निर्वेद को उदाहरण—(सवैया)

यों मन लालची लालच में लगि लोभ-तरंगन में अवगाह्यो।
त्यों 'पद्माकर' देह के गेह के नेह के काज न काहि सराह्यो ॥

पाप किये पै न पातकीपावन जानि कै राम को प्रेम निबाह्यो।
चाह्यो भयो न कछू कबहूँ जमराज हू सों बृथा बैर बिसाह्यो ।।४७३।

पुनर्यथा—(दोहा)

भयो न कोऊ होइगो, मो समान मतिमंद।
तजे न अब लौं बिषय-बिष, भजे न दसरथनंद ।।४७४।।

ग्लानि को लक्षण

भूखहि तें कि पियास तें, कै रतिश्रम तें अंग।
बिह्वल होत गलानि सों, कंपादिक स्वरभंग ।।४७५।।

ग्लानि को उदाहरण—(सवैया)

आजु लखी मृगनैनी मनोहर बेनी छुटी छहरै छबि छाई।
टूटे हरा हियरा पै परे 'पद्माकर' लीक-सी लंक लुनाई ।।
कै रति-केलि सकेलि सुखै कलि केलि के भौन तें बाहिर आई।
राजि रही रति आँखिन में मन में धौं कहा तन में सिथिलाई ।।४७६।।

पुनर्यथा—(दोहा)

सिथिल गात काँपत हियो, बोलत बनत न बैन।
करी खरी बिपरीत कहुँ, कहत रँगीले नैन ।।४७७।।

शंका को लक्षण

कै अपनी दुर्नीति, कै दुवन-क्रूरता मानि।
आवे उर में सोच अति, सो संका पहिचानि ।।४७८।।

शंका को उदाहरण—(कवित्त)

मोहि लखि सोवत बिथोरि गो सुबेनी बनी,
तोरि गो हिये को हरा छोरि गो सुगैया को।
कहै 'पद्माकर' त्यों घोरि गो घनेरो दुख,
गो बिसासी आज लाज ही की नैया को ।।

अहित अनैसो ऐसो कौन उपहास यहै,
सोचत खरी मैं परी जोवत जुन्हैया को।
बूझैंगी चवैया तब कैहौं कहा दैया, इत
पारि गो को मैया मेरी सेज पै कन्हैया को ॥४७९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

लगे न कहुँ ब्रजगलिन में, आवत-जात कलंक।
निरखि चौथ को चाँद यह, सोचति सुमुखि ससंक ॥४८०॥

असूया को लक्षण

सहि न सकै सुख और को, यहै असूया जान।
क्रोध गर्व दुख दुष्टता, ये सुभाव अनुमान ॥४८१॥

असूया को उदाहरण—(कवित्त)

आवत उसासी, दुख लगै, और हाँसी सुनि,
दासी उर लाइ कहो को नहिं कहा कियो।
कहै 'पद्माकर' हमारे जान ऊधो उन,
तात को न मात को न भ्रात को कहा कियो॥
कंकालिनि कूबरी कलंकिनि कुरूप तैसी,
चेटकिनि चेरी ताके चित्त को कहा कियो।
राधिका की कहवत कहि दीजो मोहन सों,
रसिक-सिरोमनि कहाइ धौं कहा कियो ॥४८२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

जैसे कों तैसो मिलै, तब ही जुरत सनेह।
ज्यों त्रिभंग तन स्याम को, कुटिल कूबरी-देह ॥४८३॥

मद को लक्षण

धन यौवन रूपादि तें, कै मदादि के पान।
प्रगट होत मद-भाव, तहँ औरै गति बतरान ॥४८४॥

मद को उदाहरण—(सवैया)

पूस-निसा में सु बारुनी लै बनि बैठे दुहूँ मद के मतवाले।
त्यों 'पद्माकर' झूमैं झुकैं घन घूमि रचे रस-रंग रसाले॥
सीत कों जीति अभीत भये सु गनै न सखी कछू साल-दुसाले।
छाक-छकी छबि ही कों पिये मद नैनन के किये प्रेम के प्याले ४८५

पुनर्यथा—(दोहा)

धनमद यौबनमद महा, प्रभुता को मद पाइ।
ता पर मद को मद जिन्हैं, को तेहि सकै सिखाइ॥४८६॥

श्रम को लक्षण

अति रति अति गति तें जहाँ, सु अति खेद सरसाइ।
सो श्रम तहाँ सुभाव ये, खेद उसास मनाइ॥४८७॥

श्रम को उदाहरण—(सवैया)

कै रति-रंग थकी थिर ह्वै परजंक में प्यारी परी सुख पाइ कै।
त्यों 'पद्माकर' स्वेद के बुंद रहे मुकताहल-से तन छाइ कै॥
बिंदु रचे मेहँदी के लसैं कर, ता पर यों रह्यो आनन आइ कै।
इंदु मनो अरबिंद पै राजत इंद्रबधून के बृंद बिछाइ कै॥४८८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

श्रमजल-कन दलकन प्रगट, पलकन थकित उसास।
करी खरी बिपरीत रति, परी बिसासी पास॥४८९॥

धृति को लक्षण

साहस ज्ञान सुसंग तें, धरै धीरता चित्त।
ताही सों धृति कहत हैं, सुकबि सबै नित-नित्त॥४९०॥

धृति को उदाहरण—(सवैया)

रे मन साहसी साहस राखु सुसाहस सों सब जेर फिरैंगे।
ज्यों 'पद्माकर' या सुख में दुख त्यों दुख में सुख सेर फिरैंगे॥

वैसही बेनु बजावत स्याम सु नाम हमार हू टेर फिरैंगे।
एक दिना नहिं एक दिना कबहूँ फिरि वे दिन फेर फिरैंगे ॥४९१

पुनर्यथा—

या जग जीवन को है यहै फल जो छल छाँड़ि भजे रघुराई।
सोधि के संत महंतन हूँ 'पद्माकर' बात यहै ठहराई ॥
ह्वै रहै होनी प्रयास बिना अनहोनी न ह्वै सकै कोटि उपाई।
जो बिधि भाल में लीक लिखी सो बढ़ाई बढ़ न घटै न घटाई ४९२

पुनर्यथा—(दोहा)

बनचर बन-चर गगनचर, अजगर नगर निकाय।
'पद्माकर' तिन सबन की, खबरि लेत रघुराय ॥४९३॥

आलस्य को लक्षण

जागरनादिक तें जहाँ, जो उपजत अलसानि।
ताही को आलस कहत, जे कोबिद रसखानि ॥४९४॥

आलस्य को उदाहरण—(कवित्त)

गोकुल में गोपिन गोबिंद-संग खेली फाग,
राति भरि प्रात-समै ऐसी छबि छलकैं।
देहैं भरी-आलस कपोल रस-रोरी-भरे,
नींद-भरे नयन कछूक झपैं झलकैं ॥
लाली-भरे अधर बहाली-भरे मुखबर,
कवि 'पद्माकर' बिलोके को न ललकैं।
भाग-भरे लाल औ सुहाग-भरे सब अंग,
पीक-भरी पलकैं अबीर-भरी अलकैं ॥४९५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

निसि जागी लागी हिये, प्रीति उमंगत प्रात।
उठि न सकति आलस-वलित, सहज सलोने गात ॥४९६॥

विषाद को लक्षण

फुरै न कछु उद्योग जहँ, उपजै अति ही सोच।
ताहि बिषाद बखानहीं, जे कवि सदा अपोच ॥४९७॥

विषाद को उदाहरण—(कवित्त)

सोच न हमारे कछू त्याग मनमोहन के,
तन को न सोच जो पै यों ही जरि जाइहै।
कहै 'पद्माकर' न सोच अब एहू यह,
आइहै तो आइहै न आइहै न आइहै ॥
जोग को न सोच अरु भोग को न सोच कछू,
ये ही बड़ो सोच सो तौ सबनि सुहाइहै।
कूबरी के कूबर में बेध्यो है त्रिभंग, ता
त्रिभंग कों त्रिभंगी लाल कैसे सुरझाइहै ॥४९८॥

पुनर्यथा—

एकै संग धाये नंदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगनि गये जु भरि आनँद मढ़ै नहीं।
धोइ-धोइ हारी 'पद्माकर' तिहारी सौंह,
अब तो उपाय एकौ चित्त पै चढ़ै नहीं ॥
कैसी करौं, कहाँ जाउँ, का सों कहौं, कौन
सुनै, कोऊ तौ निकासो जा सों दरद बढ़ै नहीं।
ए री मेरी बीर जैसे-तैसे इन आँखिन तें,
कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं ॥४९९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अब न धीर धारत बनत, सुरति बिसारी कंत।
पिक पापी पीकन लगे, बगरयो बधिक बसंत ॥५००॥

मति को लक्षण

नीति निगम आगमन तें, उपजै भलो बिचार।
ताही कों मति कहत हैं, सब ग्रंथन को सार ॥५०१॥

मति को उदाहरण—(सवैया)

बादहि बाद बदी के बके मति बोरि दै बंज बिषै-बिष ही को।
मानि लै या 'पद्माकर' की कही जो हित चाहति आपने जी को ॥
संभु के जीव की जीवनमूरि सदा सुखदायक है सब ही को।
रामहि राम कहै रसना कस ना तु भजै रसनाम सही को ॥५०२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

पाछे पर न कुसंग के, 'पद्माकर' यहि डीठि।
परधन खात कुपेट ज्यों, पिटत बिचारी पाठि ॥५०३॥

चिंता का लक्षण

जहाँ कौन हु बात की, चित में चिंता होय।
चिंता ता कों कहत हैं, कबि-कोबिद सब कोय ॥५०४॥

चिंता को उदाहरण—(कवित्त)

झिलत झकोर रहै जोबन को जोर रहै,
समद मरोर रहै सोर रहै तब सों।
कहै 'पद्माकर' तकैयन के मेह रहै, नेह
रहै नैननि न मेह रहै द्रब सों ॥
साजत सुबैन रहै उनमद नैन रहै,
चित में न चैन रहै चातकी के रव सों।
गेह में न नाथ रहै द्वारे ब्रजनाथ रहै,
की लौं मन हाथ रहै साथ रहै सब सों ॥५०५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कोमल कंज-मृनाल पै, कियो कलानिधि बास ।
कब को ध्यान रह्यो जु धरि, मित्र मिलन की आस ॥५०६॥

मोह को लक्षण

आपुहि अपनी देह को, ज्ञान जबै नहिं होइ ।
बिरह-दुःख चिंता-जनित, मोह कहावत सोइ ॥५०७॥

मोह को उदाहरण—(सवैया)

दौउन कों सुधि है न कछू बुधि वाही बलाइ में बूड़ि बही है ।
त्यों 'पद्माकर' दीन मिलाइ क्यों चंग चवाइन की उमही है ॥
आजुहि की वा दिखादिख में दसा दोउन की नहिं जाति कही है ।
मोहन मोहि रह्यो कब को कब की वह मोहनी मोहि रही है ॥५०८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सटपटाति कब की हँसी, दीह दृगन में मेह ।
सु ब्रजबाल मोही परति, निरमोही के नेह ॥५०९॥

स्वप्न, बिबोध औ स्मृति को लक्षण

सुपन स्वप्न को देखिबो, जगिबो वहै बिबोध ।
सुमिरन बीती बात को, सुमृति-भाव सब सोध ॥५१०॥

स्वप्न को उदाहरण—(सवैया)

काँपि रहै छिन सोवत हू कछु भाषिबो मो अनुसारि रही है ।
त्यों 'पद्माकर' रंच रुमंचनि स्वेद के बुंदनि धारि रही है ॥
बेष दिखादिखी के सुख में तन की तनको न सँभार रही है ।
आनति हौं सखि सापने में नँदलाल कों नारि निहारि रही है ॥५११॥

पुनर्यथा—(दोहा)

क्यों करि झूठी मानिये, सखि सपने की बात ।
जु हरि हर्यो सोवत हियो, सो न पाइयत प्रात ॥५१२॥

विबोध को उदाहरण—(कवित्त)

अधखुली कंचुकी उरोज अध-आधे खुले,
अधखुले वेष नख-रेखन के झलकैं।
कहै 'पद्माकर' नवीन अधनीबी खुली,
अधखुले छहरि छरा के छोर छलकैं॥
भोर जगि प्यारी अध-ऊरध इतै की ओर,
भाखी झिखि झिरकि उघारि अध-पलकैं।
आँखैं अधखुलीं अधखुली खिरकी है खुली,
अधखुले आनन पै अधखुली अलकैं॥५१३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अनुरागी लागो हिये, जागी बड़े प्रभात।
ललित नैन बेनी छुटी, छाती पर छहरात॥५१४॥

स्मृति को उदाहरण—(सवैया)

कंचन-आभा कदंब-तरे करि कोऊ गई तिय तीज तयारी।
हौं हू गई 'पद्माकर' त्यों चलि औचक आइ गो कुंजबिहारी॥
हेरि हिँडोरे चढ़ाइ लियो कियो कौतुक सो न कह्यो परै भारी।
फूलनवारी पियारी निकुंज की भूलन है नव भूलनवारी॥५१५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

करी जु ही तुम वा दिना, वा के सँग बतरान।
वहै सुमिरि फिरि-फिरि तिया, राखति अपने प्रान॥५१६॥

अमर्ष को लक्षण

जहाँ जु अमरष होत, लखि दूजे को अभिमान।
अमरष ता कों कहत है, जे कबि सदा सुजान॥५१७॥

अमर्ष को उदाहरण—(कवित्त)

जैसो तैं न मो सों कहूँ नेक हू डरात हुतो,
ऐसो अब हौं हूँ तो सों नेक हू न डरिहौं।
कहै 'पद्माकर' प्रचंड जो परैगो तौ,
उमंड करि तो सों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥५१८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

गरब सु अंजन ही बिना, कंजन को हरि लेति।
खंजन-मद-भंजन-अरथ, अंजन अँखियन देति॥५१९॥

गर्व को लच्छण

बल बिद्या रूपादि को, कीजै जहाँ गुमान।
गरब कहत सब ताहि कों, जे कबि सुमति सुजान॥५२०॥

गर्व को उदाहरण—(कवित्त)

बानी के गुमान कल कोकिल-कहानी कहा,
बानी की सुबानी जाहि आवत भनै नहीं।
कहै 'पद्माकर' गोराई के गुमान,
कुच-कुंभन पै केसरि की कंचुकी ठनै नहीं॥
रूप के गुमान तिल-उपमा न आनै उर,
आनन-निकाई पाइ चंद-कीरनै नहीं।
मृदुता-गुमान मखतूल हू न मानै कछु,
गुन के गुमान गनगौरि कों गनै नहीं॥५२१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

गुल पर गालिब कमल है, कमलन पै सु गुलाब।
गालिब गहब गुलाब पै, मो-तन-सुरभि सुभाव ॥५२२॥

उत्सुकता को लक्षण

जहाँ हितू के मिलन-हित, चाह रहति हिय माहि।
उतसुकता ता कों कहत, सब ग्रंथन में चाहि ॥५२३॥

उत्सुकता को उदाहरण—(कवित्त)

ताकिये तितै-तितै कुसुंभ-सो चुवोई परै,
प्यारी परबीन पाउ धारति जितै-जितै।
कहै 'पद्माकर' सु पौन तें उताली,
बनमाली पै चली यों बाल बासर बितै-बितै॥
बार ही के भारन उतारि देति आभरन,
हीरन के हार देति हिलिन हितै-हितै।
चाँदनी के चौसर चहूँघा चौक चाँदनी में,
चाँदनी-सी आई चंद-चाँदनी चितै-चितै ॥५२४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सजे बिभूषन-बसन सब, सुपिय-मिलन की हौंस।
सह्यो परत नहि कैस हू, रह्यो अधघरी द्यौस ॥५२५॥

अवहित्थ को लक्षण

जो जहँ करि कछु चातुरी, दसा दुरावै आय।
ताही कों अवहित्थ यह, भाव कहत कबिराय ॥५२६॥

अवहित्थ को उदाहरण—(सवैया)

भोर अली जमुना-जल-धार में धाइ धँसी जल-केलि की मातो।
त्यों 'पद्माकर' पैग चलै उछलै जब तुंग तरंग बिघाती॥

टूटे हरा छरा छूटे सबै सरबोर भई अँगिया रँगराती।
को कहतो यह मेरी दसा गहतो न गोबिंद तो मैं बहि जाती ॥५२७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

निरखत ही हरि हरषि कै, रहे सु आँसू छाइ।
बूझत अलि केवल कह्यो, लग्यो धूम ही धाइ ॥५२८॥

दीनता को लक्षण

अति दुख तें बिरहादि तें, परति जबहि जो दीन।
ताहि दीनता कहत हैं, जे कबित्त-रस-लीन ॥५२९॥

दीनता को उदाहरण—(सवैया)

कै गिनती-सी इती बिनती दिन तीनक लौं बहु बार सुनाई।
त्यों 'पद्माकर' मोह-मया करि तोहि दया न दुखीन की आई।
मेरो हरा हरहार भयो अब ताहि उतारि उन्हें न दिखाई।
ल्याई न तू कबहूँ बनमाल गोपाल की वा पहिरी-पहिराई ॥५३०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मुख मलीन तन छीन छबि, परी सेज पर दीन।
लेत क्यों न सुधि साँवरे, नेही निपट नवीन ॥५३१॥

हर्ष को लक्षण

जहाँ कौन हूँ बात तें, उर उपजत आनंद।
प्रकटे पुलक प्रसेद तें, कहत हरष कबिवृंद ॥५३२॥

हर्ष को उदाहरण—(सवैया)

जगजीवन को फल जानि पस्यो धनि नैनन कों ठहरैयतु है।
'पद्माकर' ह्यो हुलसै पुलकै तनु सिंध सुधा के अन्हैयतु है॥
मनँ पैरत-सो रस के नद में अति आनँद में मिलि जैयतु है।
अब ऊँचे उरोज लखे तिय के सुरराज के राज-सो पैयतु है ॥५३३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तुमहिं बिलोकि बिलोकिये, हुलसि रहे यों गात ।
आँगी में न समात उर, उर में मुद न समात ॥५३४॥

ब्रीड़ा को लक्षण

जहाँ कौन हूँ हेत तें, उर उपजति अति लाज ।
ब्रीड़ा ता कों कहत हैं, सुकविन के सिरताज ॥५३५॥

ब्रीड़ा को उदाहरण—(सवैया)

कालिह परों फिरि साजबो स्यान सु आजु तौ नैन सों नैन मिला लै ।
त्यों 'पद्माकर' प्रीति-प्रतीति में नीति की रीति महा उर साले ॥
ये दिन योवन के तौ इतै सुन लाज इती तु करैगो कहा लै ।
नेक तौ देखन दै मुख चंद-सो चंद्रमुखी मति घूँघुट घाले ॥५३६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

प्रथम समागम की कथा, बूझी सखिन जु आइ ।
मुख नवाइ सकुचाइ तिय, रही सु घूँघट नाइ ॥५३७॥

उग्रता औ निद्रा को लक्षण

निरदैपन सो उग्रता, कहत सुमति सब कोइ ।
सयन कहावत सोइबो, वहे सु निद्रा होइ ॥५३८॥

उग्रता को उदाहरण—(कवित्त)

सिंधु के सपूत सुत सिंधुतनया के बंधु,
मंदिर अमंद सुभ सुंदर सुधाई के ।
कहै 'पद्माकर' गिरीस के बसे हो सीस,
तारन के ईस कुल-कारन कन्हाई के ॥
हाल ही के बिरह बिचारी ब्रजबाल-ही पै,
ज्वाल-से जगावत जुआल-सी जुन्हाई के ।

ए रे मतिमंद चंद आवति न तोहि लाज,
हूै के द्विजराज काज करत कसाई के ॥५३९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कहा कहौं सखि काम को, हिय-निरदैपन आज।
तन जारत, पारत बिपति, अपति, उजारत लाज ॥५४०॥

निद्रा को उदाहरण—(कवित्त)

चहचही चुभकी चुभी है चौंक चुंबन की,
लहलही लाँबी लटैं लपटीं सु लंक पर।
कहै 'पद्माकर' मजानि मरगजी मंजु,
मसकी सु आँगी है उरोजन के अंक पर॥
सोई सरसार यों सुगंधनि समोई, स्वेद
सीतल सलोने लोने बदन मयंक पर।
किन्नरी नरी है के छरी है छबिदार परी,
टूटि-सी परी है के परी है परजंक पर ॥५४१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

नंदनँदन नव नागरी, लखि सोवत निरमूल।
उर उथरे उरजन निरखि, रह्यो सु आनन फूल ॥५४२॥

व्याधि को लक्षण

बिरह-बिबस कामादि तें, तन संतापित होइ।
ताही कों सब कबि कहत, व्याधि कहावत सोइ ॥५४३॥

व्याधि को उदाहरण—(कवित्त)

दूर ही तें देखत बिथा मैं वा बियोगिनि की,
आई भले भाजि ह्यों इलाज मढ़ि आवैगी।

सुनत पयान श्रीप्रताप को पुरंदर पै,
धन्य पटरानी जोधपुर में सती भई ॥५४८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

हने राम दससीस के, दसो सीस भुज बीस।
लै जटायु की नजरि जनु, उड़े गीध नभ सीस ॥५४९॥

अपस्मार को लक्षण

सह दुःखादिक तें जहाँ, होत कंप भूपात।
अपस्मार सो फेन मुख, स्वासादिक सरसात ॥५५०॥

अपस्मार को उदाहरण—(सवैया)

जा छिन तें सुनि साँवरे रावरे लागे कटाच्छ कछू अनियारे।
त्यों 'पद्माकर' ता छिन तें, तिय सों अँग-अंग न जात सँभारे॥
ह्वै हिय हायल घायल-सी धन घूमि गिरी परी प्रेम विहारे।
नैन गये फिरि फैन बहे मुख चैन रह्यो नहिं मैन के मारे ॥५५१॥

पुनर्यथा—(दोहा)

लखि बिहाल एकै कहत, भई कहूँ भयभीत।
इकै कहत मिरगी लगी, लगी न जानत प्रीत ॥५५२॥

आवेग को लक्षण

अति डर तें अति नेह तें, जु उठि चालियतु बेग।
ताही कों सब कहत हैं, संचारी आवेग ॥५५३॥

आवेग को उदाहरण—(कवित्त)

आई संग आलिन के ननद-पठाई नीठि,
सोहति सोहाई सीस ईंगुरी सुपट की।
कहै 'पद्माकर' गँभीर जमुना के तीर,
लागी घट भरन नवेली नेह-अँटकी॥

ताही समै मोहन सु बाँसुरी बजाई,
ता में मधुर मलार गाई ओर बंसीबट की।
तान लगे लट की रही न सुधि घूँघट की,
घाट की न औघट की बाट की न घट की ॥५५४॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सुनि आहट पिय-पगन की, भभरि भजी यों नारि।
कहुँ कंकन कहुँ किंकिनी, कहूँ सु नूपुर डारि ॥५५५॥

त्रास को लक्षण

जहाँ कौन हूँ अहित तें, उपजत कछु भय आय।
ताही कों नित त्रास कहि, बरनत हैं कबिराय ॥५५६॥

त्रास को उदाहरण—(सवैया)

ए ब्रजचंद गोबिंद गोपाल सुन्यो न क्यों केते कलाम किये मैं।
त्यों 'पद्माकर' !आनँद के नद हो नँदनंदन जानि लिये मैं ॥
माखनचोरी के खोरिन ह्वै चले भाजि कछु भय मानि जिये मैं।
दूरि ही दौरि दुरे जो चहो तो दुरो किन मेरे अँधेरे हिये मैं ॥५५७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सिसिर-सीत भयभीत कछु, सु परि प्रीति के पाय।
आपुहि तें तजि मान तिय, मिली प्रीतमैं जाय ॥५५८॥

उन्माद को लक्षण

अबिचारित आचरन जो, सो उनमाद बखान।
व्यर्थ बचन रोदन हँसी, ये स्वभाव तहँ जान ॥५५९॥

उन्माद को लक्षण—(सवैया)

आपहि आप पै रूसि रही कबहूँ पुनि आपुहि आप मनावै।
त्यों 'पद्माकर' ताल तमालनि भेटिबे कों कबहूँ उठि धावै ॥

जो हरि रावरो चित्र लखै तो कहूँ कबहूँ हँसि हेरि बुलावै।
व्याकुल बाल सुआलिन सों कह्यो चाहै कछु तो कछू कहि आवै॥५६०

पुनर्यथा—(दोहा)

छिन रोवति छिन हँसि उठति, छिन बोलति छिन मौन।
छिनछिन पर छीनी परति, भई दसा धौं कौन॥५६१॥

जड़ता को लक्षण

गमन ज्ञान आचरन की, रहै न जहँ सामर्थ।
हित अनहित देखै सुनै, जड़ता कहत समर्थ॥५६२॥

जड़ता को उदाहरण—(कवित्त)

आज बरसाने की नवेली अलबेली वधू,
मोहन बिलोकिबे कों लाज-काज त्वै रही।
छज्जा-छज्जा झाँकती झरोखनि-झरोखनि ह्वै,
चित्रसारी-चित्रसारी चंद-सम ज्वै रही॥
कहै 'पद्माकर' त्यों निकस्यो गोविंद ताहि,
जहाँ-तहाँ इकटक ताकि घरी द्वै रही।
छज्जावारी छकी-सी उझकी-सी झरोखावारी,
चित्र कैसी लिखी चित्रसारोवारी ह्वै रही॥५६३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

हलैं दुहूँ न चलैं दुहूँ, दुहुन बिसरि गे गेह।
इकटक दुहुनि दुहूँ लखैं, अटकि अटपटे नेह॥५६४॥

चपलता को लक्षण

जहँ अति अनुरागादि तें, थिरता कछू रहै न।
चित चित्चाहे आचरन, कहै चपलता ऐन॥५६५॥

चपलता को उदाहरण—(सवैया)

कौतुक एक लख्यो हरि ह्वाँ 'पद्माकर' यों तुम्हैं जाहिर की मैं ।
कोऊ बड़े घर की ठकुराइनि ठाढ़ी न बात रहै छिन की मैं ॥
झाँकति है कबहूँ झँझरीन झरोखनि त्यों सिरकी-सिरकी मैं ।
झाँकति ह्वाँ खिरकी मैं फिरै थिरकी-थिरकी खिरकी-खिरकी मैं ।।५६६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

चकरी-लौं सँकरी गलिन, छिन आवति छिन जाति ।
परी प्रेम के फंद में, बधू बितावति राति ॥५६७॥

वितर्क को लक्षण

उर उपजत संदेह जहँ, कीजै कछू विचार ।
ताहि बितर्क बिचारहीं, जे कवि सुमति उदार ॥५६८॥

वितर्क को उदाहरण—(कवित्त)

द्यौस गनगौरि के सु गिरिजा गोसाँइन को,
आवत इहाँ ही अति आनँद इतै रहै ।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज,
देखो देखिबे कों दिव्य देवता तितै रहै ॥
सैल तजि बैल तजि फल तजि गैलन में,
हेरत उमा को यों उमापति हितै रहै ।
गौरिन में कौन धौं हमारी गनगौरि यहै,
संभु घरी चारिक लौं चकित चितै रहै ॥५६९॥

पुनर्यथा—

वेऊ आये द्वारे हौं हुती जो अगवारे, और
द्वारे अगवारे कोऊ तौ न तिहि काल मैं ।
कहै 'पद्माकर' वे हरषि निरखि रहे,
त्यों ही रही हरषि निरखि नँदलाल मैं ॥

मोहिं तो न जान्यो गयो मेरी आली मेरो मन,
मोहन के जाइ धौं पत्यो है कौन ख्याल मैं ।
भूल्यो भौंह भाल मैं चुभ्यो कै टेढ़ी चाल मैं,
छक्यो कै छबि जाल मैं कै बींध्यो बनमाल मैं ॥५७०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

किधौं सु अधपक आम में, मानहु मिलो मलिंद ।
किधौं तनक है तम रह्यो, कै ठोढ़ी को बिंद ॥५७१॥

इति श्रीकूर्मवंशावतंसश्रीमन्महाराजाधिराजराजेन्द्रश्रीसवाई-महाराजजगतसिंहाज्ञया कविपद्माकरविरचितजगद्विनोदनामकाव्ये संचारीभावप्रकरणम् ।

अथ स्थायीभाव

(दोहा)

रस अनुकूल बिकार जो, उर उपजत है आय ।
थाईभाव बखानहीं, तिनहीं को कबिराय ॥५७२॥
है सब भावन में सिरे, टरत न कोटि उपाव ।
है परिपूरन होत रस, तेई थाईभाव ॥५७३॥
रति इक हास जु सोक पुनि, बहुरि क्रोध उतसाह ।
भय ग्लानि आचरज निरबेद कहत कबिनाह ॥५७४॥
नवरस के नौई इतै, थाईभाव प्रमान ।
तिन के लच्छन लच्छ सब, या बिधि कहत सुजान ॥५७५॥

रति को लच्छण

सुप्रिय-चाह तें होत जो, सुमन अपूरब प्रीति ।
ताहीं को रति कहत हैं, रस-ग्रंथन की रीति ॥५७६॥

रति को उदाहरण—(कवित्त)

सजन लगी है कहूँ कबहूँ सिँगारन को,
तजन लगी है कहूँ ऐसे बसवारी को ।
चखन लगी है कछू चाह 'पद्माकर' त्यों,
लखन लगी है मंजु मूरति मुरारी को ॥
सुंदर गोबिंद-गुन गनन लगी है कछू,
सुनन लगी है बात बाँकुरे बिहारी की ।
पगन लगी है लगी लगन हिये सों नेकु,
लगन लगी है कछू पी की प्रानप्यारी की ॥५७७॥

पुनर्यथा—(दोहा)

कान्ह तिहारे मान को, अति आतप यह आय ।
तिय-उर-अंकुर प्रेम को, जाइ न कहुँ कुम्हिलाय ॥५७८॥

हास को लक्षण

बचन-रूप की रचन तें, कछु उर लहै बिकास ।
ता तें परमित जो हँसनि, वहै जु कहियतु हास ॥५७९॥

हास को उदाहरण—(सवैया)

चंद्रकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराइ सुनाइ सु होरी ।
बेंदी बिसाखा रची 'पद्माकर' अंजन आँजि समाजि कै रोरी ॥
लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह को कंचुकी केसरि-बोरी ।
हेरि हरे मुसकाइ रही अँचरा मुख दै बृषभान-किसोरी ॥५८०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बिबस न ब्रजबनितान के, सखि मोहन मृदुकाय ।
चीर चोरि सुकदंब पै, कछुक रहे मुसकाय ॥५८१॥

शोक को लक्षण

अहित-लाभ हित-हानि तें, कछु जु हिये दुख होत ।
सोक सु थाईभाव है, कहत कबिन का गोत ॥५८२॥

शोक को उदाहरण—(सवैया)

मोहिं न सोच इतौ तन-प्रान को जाइ रहे कि लहै लघुताई ।
थे हु न सोच घनो 'पद्माकर' साहिबी जो पै सुकंठ ही पाई ॥
सोच इहै इक बालबधू बिन देहिगो अंगद को युवराई ।
यों बच बालिबधू के सुने, करुनाकर को करुना कछु आई ॥५८३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

काम-बाम को खसम को भसम लगावत अंग ।
त्रिनयन के नैननि जग्यो, कछु करुना को रंग ॥५८४॥

क्रोध को लक्षण

रिपुकृत अपमानादि तें, परमित चित्त-बिकार ।
जु प्रतिकूल हिय हरष को, वहै क्रोध निरधार ॥५८५॥

क्रोध को उदाहरण—(कवित्त)

नहत बिहद्द नृप-राम-दल-बद्दल में,
ऐसो एक हौं ही दुष्ट-दानव-दलन हौं ।
कहै 'पद्माकर' चहै तो चहूँ चक्रन को,
चीरि डारौं पल में पलैया पैजपन हौं ॥
दसरथलाल है कराल कछु लाल परि
भाषत भयोई नेकु रावने न गनहौं ।
रीतो करौं लंकगढ़ इंद्रहिं अभीतो करौं,
जोतौं इंद्रजीतो आजु तो मैं लछमन हौं ॥५८६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

फारौं बच्छ न अच्छ को, जौ लगि मैं हनुमान ।
तौ लौं पलक न लाइहौं, कछुक अरुन अँखियान ॥५८७॥

उत्साह को लच्छण

लखि उद्भट प्रतिभट जु कछु, जगजगात चित चाव ।
सहरष, सो रनबीर को, उतसाहस थिरभाव ॥५८८॥

उत्साह को उदाहरण—(कवित्त)

इत कपि रीछ उत राछसनहीं की चमू,
डंका देत बंका गढ़ लंका तें कढ़ै लगी ।
कहै 'पद्माकर' उमंड जग ही के हित,
चित में कछूक चोप चाप की चढ़ै लगी ॥
बानन के बाहिबे कों कर में कमान कसि,
धाई धूरधान आसमान में मढ़ै लगी ।
देखतै बनी है दुहूँ दल को चढ़ाचढ़ी में,
राम-दृग हू पै नेक लाली जो चढ़ै लगी ॥५८९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मेघनाद को लखि लखन, हरषे धनुष चढ़ाय ।
दुखित बिभीषन दबि रह्यो, कछु फूले रघुराय ॥५९०॥

भय को उदाहरण

बिकृत भयंकर के डरन, जो कछु चित अकुलाव ।
सो भय थाईभाव है, कछु ससंक जहँ गात ॥५९१॥

भय को उदाहरण—(कवित्त)

चितै-चितै चारों ओर चौंकि-चौंकि परै, त्यों ही
जहाँ-तहाँ जब-तब खटकत पात हैं ।

भाजन-खो चाहत, गँवार ग्वालिनी के कछू,
डरनि डराने-से उठाने रोम गात हैं ॥
कहै 'पद्माकर' सु देखि दसा मोहन की,
सेष हु महेस हु सुरेस हु सिहात हैं ।
एक पाय भीत एक पाय मीत-काँधे धरे,
एक हाथ छीको एक हाथ दधि खात हैं ॥५९२॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तीन पैग पुहुमी दई, प्रथमहिं परम पुनीत ।
बहुरि बढ़त लखि बामनहिं, भे बलि कछुक सभीत ॥५९३॥

ग्लानि को लक्षण

जहँ घिनाय चित चीज लखि, सुमिरि परस मन माह ।
उपजत जो कछु घिन यहै, ग्लानि कहत कविनाह ॥५९४॥

याही को नाम जुगुप्सा जानिये ।

ग्लानि को उदाहरण—(कवित्त)

आवत गलानि जो बखान करौं ज्यादा यह,
मादा मल मूत और मज्जा की सलीती है ।
कहै 'पद्माकर' जरा तौ जागि भीजी तब,
छीजी दिन-रैन जैसे रेनु ही की भीती है ॥
सीतापति राम के सनेह-बस बीती जो पै,
तौ तो दिव्य देह जमजातना तें जीती है ।
रीती रामनाम तें रही जो बिन काम तौ, या
खारिज खराब हाल खाल की खलीती है ॥५९५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

लखि बिरूप सूरपनखैं, सरुधिर चरबि चुवात।
सिय-हिय में घिन की लता, भई सु द्वै-द्वै पात ॥५९६॥

आश्चर्य को लक्षण

दरस परस सुनि सुमिरि जहँ, कौन हु अजब चरित्र।
होइ जु चित बिस्मित कछू, सो आचरज पवित्र ॥५९७॥

याही को विस्मय थाईभाव जानिये।

आश्चर्य को उदाहरण—(सवैया)

देखत क्यों न अपूरब इंदु में द्वै अरबिंद रहे गहि लाली।
त्यों 'पद्माकर' कीरबधू इक मोती चुगै मनों है मतवाली ॥
ऊपर तें तम छाइ रह्यो रबि की दब तें न दबै खुलि ख्याली।
यों सुनि बैन सखी के बिचित्र भये चित चक्रित-से बनमाली ॥५९८

पुनर्यथा—(दोहा)

नलकृत पुल लखि सिंधु में, भये चकित सुरराव।
रामपादनत भे सबहि, सुमिरि अगस्त्य-प्रभाव ॥५९९॥

निर्वेद को लक्षण

बिफल श्रमादिक तें जु कछु, उर उपजत पछिताव।
सद्गति-हित निर्वेद सो, सम रस को थिरभाव ॥६००॥

निर्वेद को उदाहरण—(सवैया)

है थिर मंदिर में न रह्यो गिरि-कंदर में न तप्यो तप जाई।
राज रिझाये न कै कबिता रघुराज-कथा न यथामति गाई ॥
यों पछितात कछू 'पद्माकर' का सों कहौं निज मूरखताई।
स्वारथ हू न कियो परमारथ यों ही अकारथ बैस बिताई ॥६०१

पुनर्यथा—(सवैया)

भोग में रोग बियोग सँयोग में योग में काय-कलेस कमायो ।
त्यों 'पद्माकर' बेद-पुरान पढ्यो पढ़ि कै बहु बाद बढ़ायो ॥
दौर्यो दुरास में दास भयो पै कहूँ बिसराम को धाम न पायो ।
कायो गमायो सु ऐसे ही जीवन हाय मैं राम को नाम न गायो ॥६०२

पुनर्यथा—(दोहा)

'पद्माकर' हौं निज कथा, का सों कहौं बखान ।
जाहि लखौं ताहै परी, अपनी-अपनी आन ॥६०३॥

इति श्रीकूर्मवंशावतंसश्रीमन्महाराजाधिराजराजेन्द्रश्रीसवाई-महाराजजगतसिंहाज्ञया मथुरास्थाने मोहनलालभट्टात्मजकवि-पद्माकरविरचितजगद्विनोदनामकाव्ये स्थायीभावप्रकरणम् ।

अथ रसनिरूपण-वर्णन

(दोहा)

मिलि बिभाव अनुभाव पुनि, संचारिन के बृंद ।
परिपूरन थिरभाव यों, सुर-स्वरूप आनंद ॥६०४॥
ज्यों पय पाइ बिकार कछु, है दधि होत अनूप ।
तैसे ही थिरभाव को, बरनत कबि रसरूप ॥६०५॥
सो रस है नव भाँति को, प्रथम कहत शृंगार ।
हास्य करुन पुनि रौद्र गनि, बीर सु चारि प्रकार ॥६०६॥
बहुरि भयानक जानिये, पुनि बीभत्स बखानि ।
अद्भुत अष्टम नवम पुनि, सांत सुरस उर आनि ॥६०७॥

अथ शृंगाररस-वर्णन

जा को थाईभाव रति, सो शृंगार सु होत ।
मिलि बिभाव अनुभाव पुनि, संचारिन के गोत ॥६०८॥

रति कहियतु जो मन-लगनि, प्रीति अपर पर जाय।
थाईभाव सिँगार के, भल भाषत कबिराय ॥६०९॥
परिपूरन थिरभाव रति, सो सिँगाररस जान।
रसिकन को प्यारो सदा, कबिजन कियो बखान ॥६१०॥
आलंबन शृंगार के, तिय-नायक निरधार।
उद्दीपन सब सखि-सखा, बन-बागादि-बिहार ॥६११॥
हाव-भाव मुसकानि मृदु, इमि और हु जु बिनोद।
है अनुभाव सिँगार नव, कबिजन कहत प्रमोद ॥६१२॥
उन्मादिक संचरत तहँ, संचारी है भाव।
कृस्न देवता स्याम रँग, सो सिँगार रसराव ॥६१३॥
सो सिँगार द्वै भाँति को, दंपति-मिलन सँयोग।
अटक जहाँ कछु मिलन की, सो शृंगार-बियोग ॥६१४॥

संयोग-शृंगार को वर्णन—(छप्पय)

कल कुंडल दुहुँ डुलत, खुलत अलकावलि बिपुलित।
स्वेद-सीकरन मुदित, तनक तिलकावलि सुललित ॥
सुरत-मध्य मति लसत, हरष हुलसत चख चंचल।
कबि 'पद्माकर' छकित, झपित झपि रहत दृगंचल ॥
इमि नित बिपरीत-सुरति-समै, अस तिय सुख साधक जु सब।
हरि-हर-बिरंचि-पुर उरगपुर, सुरपुर लै कह आज अब ॥६१५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तिय पिय के पिय तीय के, नखसिख साजि सिँगार।
करि बदलौ तन-मन हु को, दंपति करत बिहार ॥६१६॥

बियोग-शृंगार को लक्षण

जहँ बियोग पिय-तीय को, दुखदायक अति होत।
बिप्रलंभ-शृंगार सो, कहत कबिन को गोत ॥६१७॥

वियोग-श्रृंगार को वर्णन—(सवैया)

सुम सीतल मंद सुगंध समीर कछू छल-छंद-से छ्वै गये हैं।
'पदमाकर' चाँदनी चंद हू के कछू औरहि डौरन च्वै गये हैं॥
मनमोहन सों बिछुरे इत ही बनि कै न अबै दिन द्वै गये हैं।
सखि वे हम वे तुम वेई बने पै कछू-के-कछू मन ह्वै गये हैं॥६१८

पुनर्यथा—

धीर समीर सु तीर तें तीछन ईछन कैस हु ना सहती मैं।
त्यों 'पदमाकर' चाँदनी चंद चितै चहुँओरन चौंकती जी मैं॥
छाइ बिछाइ पुरैन के पातन लेटती चंदन की चवकी मैं।
नीच कहा बिरहा करतो सखि होती कहूँ जो पै मीच मुठी मैं॥६१९

पुनर्यथा—

ऐसी न देखी सुनी सजनी घनी बाढ़त जात बियोग की बाधा।
त्यों 'पदमाकर' मोहन को तब तें कल है न कहूँ पल आधा॥
लाल गुलाल घलाघल में दृग ठोकर दै गई रूप अगाधा।
कै गई कै गई चेटक-सी मन लै गई लै गई लै गई राधा॥६२०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अटकि रहे कित कामरत, नागर नंदकिसोर।
करहुँ कहा पीकन लगे, पिक पापी चहुँ ओर॥६२१॥

वियोग-श्रृंगार के भेद

त्रिबिध बियोग-सिँगार यह, इक पूरब-अनुराग।
बरनत मान, प्रबास पुनि, निरखि नेह की लाग॥६२२॥

पूर्वानुराग को लक्षण

होत मिलन तें प्रथम ही, व्याकुलता उर आनि।
सो पूरब-अनुराग है, बरनत कबि रसखानि॥६२३॥

पूर्वानुराग को उदाहरण—(कवित्त)

जैसी छबि-स्याम की पगी है तेरी आँखिन में,
ऐसी छबि तेरी स्याम-आँखिन पगी रहै।
कहै 'पद्माकर' ज्यों तान में पगी है त्यों ही,
तेरी मुसकानि कान्ह-प्रान में पगी रहै॥
धीर धर धीर धर कीरतिकिसोरी, भई
लगन इतै-उतै बराबर जगी रहै।
जैसो रट तोहि लागी माधव की राधे वैसी,
राधे-राधे-राधे रट माधवै लगी रहै॥६२४॥

पुनर्यथा—

मोहिं तजि मोहनै मिल्यो है मन मेरो दौरि,
नन हू मिले हैं देखि-देखि साँवरो सरीर।
कहै 'पद्माकर' त्यों तानमय कान भये,
हौं तो रही जकि थकि भूली-सी भ्रमी-सी बीर॥
ये तो निरदई दई इन को दया न दई,
ऐसी दसा भई मेरी कैसे धरौं तन धीर।
होतो मन हू के मन नैनन के नैन जो पै,
कानन के कान तो पै जानतो पराई पीर॥६२५॥

पुनर्यथा—

मधुर-मधुर मुख मुरली बजाइ, धुनि
धमकि धमारन की धाम-धाम कै गयो। फाग
कहै 'पद्माकर' त्यों अगर अबीरन की,
करि कै घलाघली छलाछली चितै गयो॥
को है वह ग्वालिनी गुवालन के संग में,
अनंग छबिवारो रसरंग में भिजै गयो।

ह्वै गयो सनेह फिरि छ्वै गयो छरा को छोर,
फगुवा न दै गयो हमारो मन लै गयो ॥६२६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

ज्यों-ज्यों बरषत घोर घन, घन घमंड गरुवाइ।
त्यों-त्यों परत प्रचंड अति, नई लगन की लाइ ॥६२७॥

मान को लक्षण

सूचक पिय अपराध को, इंगित कहिये मान।
त्रिविध मान सो मानिये, लघु मध्यम गुरु आन ॥६२८॥

लघुमान को लक्षण

परतिय-दरसन दोष तें, करै जु तिय कछु रोष।
सु लघुमान पहिचानिये, होत ख्याल ही तोष ॥६२९॥

लघुमान-वर्णन—(कवित्त)

वाही के रँगी है रँग वाही के पगी है मग,
वाही के लगी है सँग आनँद-अगाधा को।
कहै 'पद्माकर' न चाह तजि नेकु दृग,
तारन तें न्यारो कियो एक पल आधा को॥
ताहू पै गोपाल कछु ऐसे ख्याल खेलत हैं,
मान मोरिबे की देखिबे की करि साधा को।
काहू पै चलाइ चख प्रथम खिझावैं फेरि,
बाँसुरी बजाइ कै रिझाइ लेत राधा को ॥६३०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

ये हैं जिन सुख वे दिये, करति क्यों न हिय होस।
ते सब अबहिं भुलाइयत, तनिक दृगन के दोस ॥६३१॥

मध्यममान को लक्षण

और तिया को नाम कहुँ, पिय-मुख तें कढ़ि जाइ।
होत मान-मध्यम, मिटै सौंहनि किये बनाइ ॥६३२॥

मध्यममान-वर्णन—(कवित्त)

बैस ही की थोरी पै न भोरी है किसोरी यह,
या की चित-चाह राह और की मझैयो जिन।
कहै 'पद्माकर' सुजान रूपखान आगे,
आन-बान आन की सुआन कै लगैयो जिन॥
जैसे अब तैसे साधि सौंहनि मनाइ ल्याई,
तुम इक मेरी बात एती बिसरैयो जिन।
आजु की घरी तें लै सु भूलिहू भले हो स्याम,
ललिता को लै कै नाम बाँसुरी बजैयो जिन ॥६३३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

आनि-आनि तिय-नाम लै, तुमहिं बुलावत स्याम।
लैन कह्यो नहिं नाह को, निज तिय को जो नाम ॥६३४॥

गुरुमान को लक्षण

आनि-तिया-रत पीउ लखि, होत मान गुरु आइ।
पाइ परें भूषन भरें, छूटत कहूँ बराइ ॥६३५॥

गुरुमान-वर्णन—(कवित्त)

नीकी कै अनैसी पुनि जैसी होइ तैसी,
तऊ यौवन की मूरि तें न दूरि भागियतु है।
कहै 'पद्माकर' उजागर गोबिंद जो पै,
चूकि गे कहूँ तो एतो रोष रागियतु है ? ॥

प्रेमरस-हायलै जगाय लै हिये सों हित,
पायलै पहिरि चलु प्रेम पागियतु है।
ए री मृगनैनी तेरी पाइ लगि बेनी पाइ,
पाइ लगि तेरे फेरि पाइ लागियतु है ॥६३६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

निरखि नेकु नीको बनो, या कहि नंदकुमार।
सुभुज मेलि मेल्यो गरे, गजमोतिन को हार ॥६३७॥

प्रवास को लक्षण

पिय जु होइ परदेस में, सो प्रवास उर आन।
जा तें होत बधून को, अति संताप निदान ॥६३८॥

प्रवास के भेद

सो प्रवास द्वै भाँति को, इक भविष्य इक भूत।
तिन के कहत उदाहरन, रसग्रंथन के सूत ॥६३९॥

भविष्यत् प्रवास को उदाहरण—(सवैया)

औसर कौन, कहा समयो, कहा काज, बिवाद ये कौन-सी पावन।
त्यों 'पद्माकर' धीर समीर उसीर भयो तपि के तन-तावन ॥
चैत की चाँदनी चारु लखे चरचा चलिबे की लगे जु चलावन।
कैसी भई तुम्हैं गंग की गैल में गीत मदारन के लगे गावन ॥६४०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

रमन-गमन सुनि ससिमुखी, भई दिवस को चंद।
परखि प्रेम पूरन प्रगट, निरखि रहे नँदनंद ॥६४१॥

नये प्रवास को उदाहरण—(सवैया)

कान्ह पगे कुबजा के कलोलनि डोलनि छोड़ दई हर भाँती।
माधुरी मूरति केवे बिना 'पद्माकर' लागै न भूमि सोहाती ॥

का कहिये उन सों सजनी यह बात है आपने भाग समातो।
दोष बसंत को दीजै कहा उलहै न करील की डारन पातो ॥६४२॥

पुनर्यथा—(कवित्त)

रैन-दिन नैनन तें बहत न नीर, कहा
करतो अनंग को उमंग सर-चाप तो।
कहै 'पद्माकर' त्यों राग बाग-बन कैसो,
तैसो तन ताय-ताय तारापति तापतो॥
कीन्हो जो बियोग तो सँयोग हू न देतो दई,
देतो जो सँयोग तो बियोगहि न थापतो।
होतो जो न प्रथम सँयोग सुख वैसो वह,
ऐसो अब तो न या बियोग-दुख व्यापतो ॥६४३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

सुनत सँदेस बिदेस तजि, मिलते आइ तुरंत।
समुझि परत सुकंत जहँ, तहँ प्रगट्यो न बसंत ॥६४४॥

वियोग की अवस्था

इक बियोग-शृंगार में, इती अवस्था थाप।
अभिलाषा गुनकथन पुनि, पुनि उद्वेग प्रलाप ॥६४५॥
चितादिक जे षट कहीं, बिरह-अवस्था जानि।
संचारी भावन बिषे, हौं आयहुँ जो बखानि ॥६४६॥
ता तें इत बरनत न मैं, अभिलाषादिक चार।
तिन के लच्छन लच्छ सब, हौं भाषत निरधार ॥६४७॥

अभिलाषा को लक्षण

तिय अरु पिय जो मिलन की, करैं बिबिध चित-चाह।
ताही को अभिलाष कहि, बरनत हैं कबिनाह ॥६४८॥

अभिलाषा को उदाहरण—(कवित्त)

ऐसी मति होति अब ऐसी करौं आली,
बनमाली के सिँगार में सिँगारिबोई करिये ।
कहै 'पद्माकर' समाज तजि काज तजि,
लाज को जहाज तजि डारिबोई करिये ॥
घरी-घरी पल-पल छिन-छिन रैन-दिन,
नैनन की आरती उतारिबोई करिये ।
इंदु तें अधिक अरबिंद तें अधिक, ऐसो
आनन गोबिंद को निहारिबोई करिये ॥६४९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

पिय-आगम तें प्रथम ही, करि बैठी तिय मान ।
कब धौं आइ मनाइहैं, यही रही धरि ध्यान ॥६५०॥

गुणकथन को लक्षण

करै बिरह में जो जहाँ, पिय-गुन गुनन बखान ।
ताही को गुनकथन कहि, बरनत सुकबि सुजान ॥६५१॥

गुणकथन को उदाहरण—(कवित्त)

हौं हूँ गई जान तित आइ गो कहूँ तें कान्ह,
आनि बनितान हूँ को झपकि झलो गयो ।
कहै 'पद्माकर' अनंग की उमंगन सों,
अंग-अंग मेरे भरि नेह को छलौ गयो ॥
ठानि ब्रजठाकुर ठगोरिन की ठेलाठेल,
मेला के मझार हित-हेला कै भलौ गयो ।
आह छ्वै छला छ्वै छिगुनी छ्वै छरा छोरन छ्वै,
छलिया छबीलो छैल छाती छ्वै चलौ गयो ॥६५२॥

पुनर्यथा—(सवैया)

चोरिन गोरिन में मिलि कै इतै आई ही हाल गुवाल कहाँ की।
को न बिलोकि रह्यो 'पद्माकर' वा तिय की अवलोकनि बाँकी॥
बीर अबीर की धूँधुरि में कछु फेर-सो कै मुख फेरि कै झाँकी।
कै गई काटि करेजन के कतरे-कतरे पतरे करिहाँ की॥६५३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

गुनवारे गोपाल के, करि गुन-गननि बखान।
इक अवधिहि के आसरे, राखति राधा प्रान॥६५४॥

उद्वेग को लक्षण

बिरह-बिंब अकुलाइ उर, त्यों पुनि कछु न सुहाइ।
चित न लगत कहुँ, कैस हू, सो उद्वेग बनाइ॥६५५॥

उद्वेग को उदाहरण—(कवित्त)

घर ना सुहात ना, सुहात बन बाहिर हू,
बाग ना सुहात जे खुसाल खुसबोहीं सों।
कहै 'पद्माकर' घनेरे घन-धाम त्यों ही,
चंद ना सुहात चाँदनी हूँ जोग जोही सों॥
साँझ ना सुहात ना सुहात दिन माँझ कछू,
व्यापी यह बात सो बखानत हौं तोही सों।
राति ना सुहात ना सुहात परभात आली,
जब मन लागि जात काहू निरमोही सों॥६५६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

है उदास अति राधिका, ऊँची लेति उसास।
सुनि मनमोहन कान्ह को, कुटिल कूबरी-पास॥६५७॥

प्रलाप को लक्षण

बिरही जन जहँ कहत कछु, निरखि निरर्थक बैन।
ता सों कहत प्रलाप हैं, कबि कबिता के ऐन ॥६५८॥

प्रलाप को उदाहरण—(कवित्त)

आम को कहत अमिली है अमिली को आम,
आक ही अनारन को आँकिबो करति है।
कहै 'पद्माकर' तमालन को ताल कहै,
तालनि तमाल कहि ताकिबो करति है॥
'कान्है-कान्ह' कहूँ कहि कदली-कदंबन को,
भेंटि परिरंभन में छाकिबो करति है।
साँवरे जू रावरे यों बिरह बिकानी बाल,
बन-बन बावरी-लौं ताकिबो करति है ॥६५९॥

पुनर्यथा—

प्रानन के प्यारे तन-ताप के हरनहारे,
नंद के दुलारे ब्रजवारे उमहत हैं।
कहै 'पद्माकर' उरूजे उर-अंतर यों,
अंतर चहेहूँ जे न अंतर चहत हैं॥
नैननि बसे हैं अंग-अंग हुलसे हैं रोम-
रोमनि रसे हैं निकसे हैं को कहत हैं।
ऊधो वे गोबिंद कोऊ और मथुरा में, यहाँ
मेरे तो गोबिंद मोहिं-मोहिं में रहत हैं ॥६६०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

निरखत घन घनस्याम कहि, भेंटन उठति जु बाम।
बिकल बीच ही करत जनु, करि कमनैती काम ॥६६१॥

मूर्छा को लक्षण

दसा बियोगहि की कहत, जु है मूरछा नाम।
जहँ न रहत सुधि कौन हूँ, कहा सीत कह घाम ॥६६२॥

मूर्छा को उदाहरण—(कवित्त)

ए हो नंदलाल ऐसो ब्याकुल परी है बाल,
हाल ही चलो तौ चलो जोरी जुरि जायगी।
कहै 'पद्माकर' नहीं तौ ये झकोरे लगें,
ओरे-लौं अचाक बिन घोरे घुरि जायगी॥
सीरे उपचारन घनेरे घनसारन को,
देखत ही देखो दामिनी-लौं दुरि जायगी।
तौ ही लग चैन जौ लौं चेतौ है न चंदमुखी,
चेतैगी कहूँ तौ चाँदनी में चुरि जायगी ॥६६३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

तोही तौ भल अवधि लौं, रहै जु तिय निरमूल।
नहिं तौ क्यों करि जियहिगी, निरखि सूल-से फूल ॥६६४॥

इति शृंगाररस-वर्णन

अथ हास्यरस-वर्णन

(दोहा)

थाई जाको हास है, वहै हास्यरस जानि॥
तहँ कुरूप कुदब कहब, कछु बिभाव ते मानि ॥६६५॥
भेद मध्य अरु ऊँच स्वर, हँसिबोई अनुभाव।
हरष चपलता और हू, तहँ संचारी भाव ॥६६६॥
स्वेत रंग रस हास्य को, देव प्रमथपति जासु।
ता को कहत उदाहरन, सुनत जो आवै हास ॥६६७॥

हास्यरस को उदाहरण—(कवित्त)

हँसि-हँसि भाजैं देखि दूलह दिगंबर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाह में।
कहै 'पदमाकर' सु काहू सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखैं सो हँसेई तहाँ राह में॥
मगन भयेऊ हँसै नगन महेस ठाढ़े,
औरै हँसै येऊ हँसि-हँसि कै उमाह में।
सीस पर गंगा हँसै भुजनि भुजंगा हँसै,
हास ही को दंगा भयो नंगा के बिवाह में॥६६८॥

पुनयथा—(दोहा)

कर मूसर नाचत नगन, लखि हलधर को स्वाँग।
हँसि-हँसि गोपी फिरि हँसै, मनहुँ पिये-सी भाँग॥६६९॥

अथ करुणारस-वर्णन

आलंबन प्रिय को मरन, उद्दीपन दाहादि।
थाई जाको सोक जहँ, वहै करुनरस यादि॥६७०॥
रोदिति महिपतनादि जहँ, बरनत कबि अनुभाव।
निर्वेदादिक जानिये, तहँ संचारी भाव॥६७१॥
चित्र कबूतर के बरन, बरुन देवता जान।
या बिधि को या करुनरस, बरनत कबि कबितान॥६७२॥

करुणारस को उदाहरण—(कवित्त)

आँसुन अन्हाय हाय-हाय कै कहत सब,
औधपुरबासी कै कहा यों दुःख दाहिये।
कहै 'पदमाकर' जलूस युवराजी को सु,
ऐसो धनी है न जाय जाके सीस बाहिये॥

सुत के पयान दसरथ ने तजे जो प्रान,
बाढ्यो सोकसिंधु सो कहाँ लौं अवगाहिये।
मूढ़ मंथरा के कहे बन को जु भेजे राम,
ऐसी यह बात कैकेई को तो न चाहिये ॥६७३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

राम भरतमुख मरन सुनि, दसरथ के बन माँह।
महि परि भे रोदत उचरि, 'हा पितु हा नरनाह' ॥६७४॥

अथ रौद्ररस-वर्णन

थाई जाको क्रोध अति, वहै रौद्ररस नाम।
आलंबन रिपु, रिपु-उमड़ उद्दीपन तिहि ठाम ॥६७५॥
भृकुटि-भंग अति अरुनई, अधर-दसन अनुभाव।
गरब चपलता और हू, तहँ संचारी भाव ॥६७६॥
रक्त रंग रस रौद्र को, रुद्र देवता जान।
तिन को कहत उदाहरन, सुनहु सुमति दै कान ॥६७७॥

रौद्ररस को वर्णन—(कवित्त)

बारि टारि डारौं कुंभकर्नहिं बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादै आजु यों बल-अनंत हौं।
कहै 'पद्माकर' त्रिकूट ही को ढाहि डारौं,
डारत करेई यातुधानन को अंत हौं ॥
अच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ है उचारौं, इमि
तोसे तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं, रावन को तो मैं हनुमंत हौं ॥६७८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

अधम चब्ब गहि गब्ब अति, चहि रावन को काल ।
दृग कराल मुख लाल करि, दौरेउ दसरथ-लाल ॥६७९॥

अथ वीररस-वर्णन

जा रस को उत्साह सुभ, है इक थाईभाव ।
सुरस बीर है चारि बिधि, कहत सबै कबिराव ॥६८०॥
युद्धबीर इक नाम है, दयाबीर बिय नाम ।
दानबीर तीजो सु पुनि, धर्मबीर अभिराम ॥६८१॥
युद्धबीर को जानिये, आलंबन रिपु-जोर ।
उद्दीपन ता को तबहि, पुनि सेना को मोर ॥६८२॥
अँग फरकन दृग अरुनई, इत्यादिक अनुभाव ।
गरब असूया उग्रता, तहँ संचारी भाव ॥६८३॥
इंद्र देवता बीर को, कुंदन बरन बिसाल ।
ता को कहत उदाहरन, सुनि जन होत खुसाल ॥६८४॥

युद्धबीर-वर्णन—(कवित्त)

सोहै अत्र ओढ़े जे न छोड़े सीस संगर की,
लंगर लँगूर उच्च ओज के अतंका में ।
कहै 'पदमाकर' त्यों हुंकरत फुंकरत,
फैलत फलात फाल बाँधत फलंका में ॥
आगे रघुबीर के समीर के तनै के संग,
तारी दै तड़ाक तड़ातड़ के तमंका में ।
संका दै दसानन को डंका दै सुबंका बीर,
डंका दै बिजै को कपि कुदि पर्‍यो लंका में ॥६८५॥

पुनयथा—

जाही ओर सोर परै घोर घन ताही ओर,
जोर जंग जालिम को जाहिर दिखात है।
कहै 'पद्माकर' अरीन की अवाई पर,
साहब सवाई की ललाई लहरात है॥
परिघ प्रचंड चमू हरषित हाथी पर,
देखत बनत सिंह माधव को गात है।
उद्धत प्रसिद्ध जुद्ध जोति ही के सौदा-हित,
रौदा ठनकारि तन हौदा में न मात है॥६८६॥

पुनर्यथा—(दोहा)

धनुष चढ़ावत भे तबहि, लखि रिपुकृत उतपात।
हुलसि गात रघुनाथ को, बखतर में न समात॥६८७॥

दयावीर-वर्णन

दयावीर में दीन-दुख बरनन आदि बिभाव।
दूरि करब दुख, मृदु कहब इत्यादिक अनुभाव॥६८८॥
सुधृति चपलता ओर हू, तहँ संचारी भाव।
दयावीर बरनत सबै, याही बिधि कबिराव॥६८९॥

दयाबीर को उदाहरण—(सवैया)

पापी अजामिल पार कियो जेहि नाम लियो सुत ही को नरायन।
त्यों 'पद्माकर' लात लगे पर बिप्र हू के पग चौगुने चायन॥
को अस दीनदयाल भयो दसरत्थ के लाल-से सूधे सुभायन।
दौरे गयंद उबारिबे को प्रभु बाहनै छोड़ि उबाहनै पायन॥६९०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

मिले सुदामा सों जु करि, समाधान सनमान।
पग पलोटि मग-श्रम हरेउ, ये प्रभु दयानिधान॥६९१॥

दानवीर-वर्णन

दान समय को ज्ञान पुनि, याचक तीरथ-गौन।
दानबीर के कहत हैं, ये बिभाव मतिभौन ॥६९२॥
तृन-समान लेखत सुधन इत्यादिक अनुभाव।
ब्रीड़ा हरषादिक गनौ, तहँ संचारी भाव ॥६९३॥

दानवीर को उदाहरण—(कवित्त)

बकसि बितुंड दये मुंडन के मुंड रिपु-
मुंडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को।
कहै 'पद्माकर' करोरन को कोष दये,
षोड़स हू दीन्हे महादान अधिकारी को॥
ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये,
अन्न-जल दीन्हे जगती के जीवधारी को।
दाता जयसिंह दोय बातैं तौ न दीनी कहूँ,
बैरिन को पीठि और डीठि परनारी को ॥६९४॥

पुनर्यथा—

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै, ताहि
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना।
कहै 'पद्माकर' सुहेममय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरि बिचारै ना।
गंज-गज-बकस महीप रघुनाथराव,
याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना ॥६९५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

दै डारे जु न भिक्षुकनि, हनि रावनहिं सुलंक।
प्रथम मिल्यो या तें प्रभुहि, सु बिभीषन है रंक ॥६९६॥

धर्मवीर-वर्णन

धर्मबीर को कवि कहत, ये बिभाव उर आन।
बेद-सुमृति-सीलन सदा, पुनि-पुनि सुनब पुरान ॥६९७॥
बेद-बिहित क्रम बचन बपु, औरहु है अनुभाव।
धृति आदिक बरनत सुकबि, तहँ संचारी भाव ॥६९८॥

धर्मवीर को उदाहरण—(कवित्त)

तृन के समान धन-धान राज त्याग करि,
पाल्यो पितु-बचन जो जानत जनैया है।
कहै 'पदमाकर' बिबेक ही को बानो बीच,
साँचो सत्यबीर धीर धीरज धरैया है॥
सुमृति पुरान बेद आगम कह्यो जो पंथ,
आचरत सोई सुद्ध करम करैया है।
मोद-मति-मंदर पुरंदर मही को धन्य,
धरम धुरंधर हमारो रघुरैया है॥६९९॥

पुनर्यथा—(दोहा)

धारि जटा बलकल भरत, गन्यो न दुख तजि राज।
भे पूजत प्रभु पादुकनि, परम धरम के काज ॥७००॥

अथ भयानकरस-वर्णन

जाको थाईभाव भय, वहै भयानक जान।
लखन भयंकर गजब कछु, ते बिभाव उर आन ॥७०१॥

कंपादिक अनुभाव तहँ, संचारी गोपादि।
काल देव क्वैला बरन, सु भयानकरस यादि ॥७०२॥

भयानक को उदाहरण—(कवित्त)

झलकत आवै झुंड झिलम-झलानि झप्यो,
तमकत आवै तेगवाही औ सिलाही है।
कहै 'पद्माकर' त्यों दुंदुभी-धुकार सुनि,
अकबक बोलै यों गनीम औ गुनाही है॥
माधव को लाल काल हू तें बिकराल, दल
साजि धायो ए दई दई धौं कहा चाही है।
कौन को कलेऊ धौं करैया भयो काल अरु,
का पै यों परैया भयो गजब इलाही है ॥७०३॥

पुनर्यथा—

ज्वाला की जलन-सी जलाक जंग-जालन को,
जोर को जमा है जोम जुलुम जिलाहे की।
कहै 'पद्माकर' सु रहियो बचाये जग,
जालिम जगतसिंह रंग अवगाहे की॥
दौरि दावादारन पै द्वार सो दिवाकर की,
दामिनी दमंकनि दुलेलै दिग-दाहे की।
काल की कुटुंबिनि कला है कुलि कालिका की,
कहर की कुंत की नजरि कछवाहे की ॥७०४॥

पुनर्यथा—(छप्पय)

भुवन धुंधुरित-धूलि धूलि-धुंधुरित सु धूम हु।
'पद्माकर' परतच्छ स्वच्छ लखि परत न भूम हु॥

भग्गत अति परि पग्ग मग्ग लग्गत अँग-अंगनि।
तहँ प्रताप पृथिपाल ख्याल खेलत खुलि खग्गनि ॥
तहँ तबहिं तोपि तुंगनि तड़पि तंतड़ान तेगनि तड़कि ।
घुकि धड़-धड़-धड़-धड़-धड़ा-धड़ धड़धड़ात तद्धा धड़कि ॥७०५॥

पुनर्यथा—(दोहा)

एक ओर अजगरहि लखि, एक ओर मृगराय।
बिकल बटोही बीच ही, परो मूरछा खाय ॥७०६॥

अथ बीभत्सरस-वर्णन

थाई जासु गलानि है, सो बीभत्स गनाव।
पीब मेद मज्जा रुधिर, दुर्गंधादि बिभाव ॥७०७॥
नाक मूँदिबो कंप तन, रोम उठब अनुभाव।
मोह असूया मूरछादिक संचारी भाव ॥७०८॥
महाकाल सुर, नील रँग, सु बीभत्सरस जानि।
ता को कहत उदाहरन, रसग्रंथनि उर आनि ॥७०९॥

बीभत्सरस को उदाहरण—(छप्पय)

पढ़त मंत्र अरु यंत्र, अंत्र लीलत इमि जुग्गिनि।
मनहुँ गिलत मदमत्त, गरुड़-तिय अरुन उरग्गिनि ॥
हरबरात हरषात, प्रथम परसत पलपंगत।
जहँ प्रताप जिति जंग, रंग अँग-अंग उमंगत ॥
जहँ 'पद्माकर' उतपत्ति अति, रन रक्कत-नद्दिय बहत।
चख चकित चित्त चरबीन चुभि, चकचकाइ चंडी रहत ॥७१०॥

पुनर्यथा—(दोहा)

रिपु-अंत्रन की कुंडली, करि जुग्गिनि जु चबाति।
पीबहि में पागी मनो, जुवति जलेबी खाति ॥७११॥

अथ अद्भुतरस-वर्णन

जाको थाई आचरिज, सो अदभुतरस गाव।
असंभवित जेते चरित, तिन को लखत बिभाव ॥७१२॥
बचन बिचल बोलनि कँपनि, रोम उठनि अनुभाव।
बितरक संका मोह ये, तहँ संचारी भाव ॥७१३॥
जासु देवता चतुरमुख, रंग बखानत पीत।
सो अदभुतरस जानिये, सकल रसन को मीत ॥७१४॥

अद्भुतरस को उदाहरण—(कवित्त)

अधम अजान एक चढ़ि कै बिमान भाष्यो,
पूछत हौं गंगा तोहि परि-परि पाइ हौं।
कहै 'पद्माकर' कृपा करि बतावै साँची,
देखे अति अदभुत रावरे सुभाइ हौं॥
तेरे गुन-गान हूँ की महिमा महान मैया,
कान-कान नाइ कै जहान मध्य छाइहौं।
एक मुख गाये ताके पंचमुख पाये अब,
पंचमुख गाइहौं तो केते मुख पाइहौं ॥७१५॥

पुनयथा—

गोपी-ग्वाल-माली जुरे आपुस में कहैं आली,
कोऊ यसुदा के औतर्‍यो इंद्रजाली है।
कहै 'पद्माकर' करै को यों उताली, जा पै
रहन न पावै कहूँ एको फन खाली है॥
देखै देवताली भई बिधि के खुसाली, कूदि
किलकति काली हेरि हँसत कपाली है।
जनम को चाली ए री अद्भुत है ख्याली, आजु
काली की फनाली पै नचत बनमाली है ॥७१६॥

पुनर्यथा—

मुरली बजाइ तान गाइ मुसकाइ मंद,
लटकि-लटकि माई नृत्य में निरत है।
कहै 'पद्माकर' गोविंद के उछाह अहि-
बिष को प्रबाह प्रतिमुख ह्वै फिरत है॥
ऐसो फैल परत फुसकारत ही में मानो,
तारन को बूंद फूतकारन गिरत है।
कोप करि जौ लौं एक फन फुफकावै काली,
तौ लौं बनमाली सोऊ फन पै फिरत है॥७१७॥

पुनर्यथा—

सात दिन सात राति करि उतपात महा,
मारुत झकोरै तरु तोरै दीह दुख में।
कहै 'पद्माकर' करी त्यों घुम-धारन हूँ,
एते पै न कान्ह कहूँ आयो रोष-रुख में॥
छोर छिगुनी के छत्र-ऐसो गिरि छाइ राख्यो,
ताके तरे गाय गोप गोपी खरी सुख में।
देखि-देखि मेघन की सेन अकुलानी, रह्यो
सिंधु में न पानी अरु पानी इंदुमुख में॥७१८॥

पुनर्यथा—(दोहा)

घन बरषत कर पर धर्‍यो, गिरि गिरिधर निरसंक।
अजब गोपसुत चरित लखि, सुरपति भयो ससंक॥७१९॥

अथ शांतरस-वर्णन

सु रस सांत निर्वेद है, जाको थाईभाव।
सतसंगति गुरु तपोबन, मृतक समान बिभाव॥७२०॥

प्रथम रुमांचादिक तहाँ, भाषत कबि अनुभाव।
धृति मति हरषादिक कहे, सुभ संचारी भाव ॥७२१॥
सुद्ध सुक्क रँग देवता, नारायन है जान।
ता को कहत उदाहरन, सुनहु सुमति दै कान ॥७२२॥

शांतरस को उदाहरण—(सवैया)

बैठि सदा सतसंगहि में बिष मानि बिषै-रस कीर्ति सदाहीं।
त्यों 'पद्माकर' झूठ जितो जग जानि सुज्ञानहिं के अवगाहीं ॥
नाक की नोक में डीठि दिये नित चाहै न चीज कहूँ चित-चाहीं।
संतत संत-सिरोमनि है धन है धन वे जन बेपरवाहीं ॥७२३॥

पुनर्यथा—(दोहा)

बन बितान रबि ससि दियो, फल भख सलिल-प्रबाह।
अवनि सेज पंखा पवन, अब न कछू परवाह ॥७२४॥
सब हित तें बिरकत रहत, कछू न संका त्रास।
बिहित करत सु न हित समुझि, सिसुवत जे हरिदास ॥७२५॥

इति नवरसनिरूपणम्।

(दोहा)

जयतसिंह नृप-हुकुम तें, 'पद्माकर' लहि मोद।
रसिकन के बसकरन को, कीन्हो जगतबिनोद ॥७२६॥

इति श्रीकूर्मवंशावतंसश्रीमहाराजराजेन्द्रश्रीसवाईमहाराज-जगतसिंहाज्ञया कविपद्माकरविरचितजगद्विनोदनामकाव्ये रसनिरूपणप्रकरणम्।

चूर्णिका

१ बदन = मुख । नँद-नंदन = श्रीकृष्ण । मुद-मूल = आनंद की जड़ ।

२ शक्ति = देवी । सिलामई देवी = जो जयपुर में हैं । आमेर = जयपुर की राजधानी । फेर = ओर ।

३ जाहिर = प्रसिद्ध । नरनाह = (नरनाथ) राजा ।

४ ईस = (ईश) स्वामी । कबित = कविता ।

५ छत्र = राजछत्र । छत्रधारी = बड़े-बड़े नरेश जिन्हें छत्र लगता है । छत्रपति = राजराजेश्वर । छिति = (क्षिति) पृथ्वी पर । छेम = (क्षेम) कल्याण । प्रभाकर = सूर्य । दरियाव = समुद्र । हद = सीमा । जागते = जगमगाते हुए । सवाई = जयपुर के राजाओं की उपाधि । कुलचंद = कुल में श्रेष्ठ । रघुरैया = रामचंद्र । आछे = कुशलपूर्वक । कच्छ = कछवाहा वंश में श्रेष्ठ । कन्हैया = श्रीकृष्ण ।

६ जगदीश्वर = संसार के स्वामी । कबीस्वर = कवियों में श्रेष्ठ । जोरत = एकत्र करते हैं । जोरि = वर्णन करके । उमहत हौं = उत्साहित होता हूँ । मानसिंहावत = मानसिंह के वंशज । काँची = कच्ची, अपुष्ट । दराज० = लंबी उम्र । रावरी = आपकी ।

७ हित = हितुआ । निधि-नेहु = प्रेम के खजाना । सरस = रस से युक्त ।

८ जाहिर० = लिखता है । हित = लिये ।

९ सिरे = श्रेष्ठ । सुरस = वह (शृंगार) रस ।

१० जुगति = युक्ति, सामर्थ्य । जथामति = बुद्धि के अनुरूप ।

१२ सुरंग = अच्छे वर्णवाले। अनंग० = काम-भाव से। तरंग० = सुगंध की लहरें। लंक = कमर। परजंक = (पर्यंक) शय्या। अंबर = आकाश। दल = पत्ता।

१३ जाहिरै० = प्रत्यक्ष प्रकट हो जाती है। उमहै = लहराती हुई बहती है। बेनी = चोटी। सुखदेनी = सुख देनेवाली। सेनी = (श्रेणी) पंक्ति, धारा। बाल = नायिका। ताल = तालाब।

१४ घरै = घर में। नवल० = नवयौवना। सुगंध० = सुगंध फैला रही है। हारन० = हार बालों में उलझ गए हैं, उन्हें सुलझा रही है। घूमनि = घिराव। ऊरुन० = दोनों जंघाओं के बीच में दबाकर। आँगी = चोली। दूनरि = दोहरी-सी होकर, नीचे की ओर इतनी झुक गई है कि शरीर दोहरा हो गया है। चौवर = चार बार परत करके, चौहरा करके। पचौवर = पाँच परत करके। चूनरि = लाल रंग की पीली या सफेद बूटियों की चद्दर।

१५ सहज = स्वभावतः। सहेली = सखियाँ।

१६ बाम = स्त्री, नायिका।

१७ बच = वचन। काय = (काया) शरीर। लज्जासील = (लज्जाशील) लज्जा से युक्त। सुभाय = स्वभाव।

१८ तेरे० = (स्वकीया नायिकाओं के गुणों की जहाँ गणना होती है, वहाँ) एक तेरा ही नाम लिखा जाता है। पगी = लीन। पेखियतु है = दिखाई पड़ती है। सुबरन = सुंदर वर्णवाला (श्लेष से सुवर्ण = सोना)। रूप = सौंदर्य। सील० = शीलरूपी सुगंध।

१९ पीछू = (पश्चात्) पति के खा लेने के बाद। पिछिले छोर = रात के पिछले भाग में। भावती = नायिका। भोर = प्रातःकाल।

२१ तरुनई = जवानी, यौवन। ता सों = उसे। प्रबीन० = जो शृंगार की बातों में पटु हैं।

२२ अलि = सखी। या = इस। बलि = सखी, नायिका। माधुरई =

मधुरता। कुच = स्तन। चढ़ती उनई-सी = कुचों का उठान चढ़ रहा है, स्तन उभड़ रहे हैं। नितंब = चूतड़। चातुरई = चतुरता। जानि० = अंगों की इस चढ़ा-ऊपरी में न जाने कमर को कौन लूट ले गया (और अंग तो उभड़ रहे हैं पर कमर पतली होती जा रही है)।

२३ गजगति० = हाथी के आने की आवाज सुनकर। बिधु = चंद्रमा। रूपकातिशयोक्ति अलंकार होने से यहाँ 'गज-गति' = मंद चाल; 'शेर' = कटि; 'बिधु' = मुख; 'कमल' = नेत्र। (विरोधाभासालंकार भी है)।

२५ प्रमानियतु = प्रमाण माना जाता है। ज्योति = प्रकाश। अलख = (अलक्ष्य)।

२६ मति-अवदात = स्वच्छ बुद्धिवाले।

२८ यहाँ नायिका और सखी के प्रश्नोत्तर हैं। गात = (गात्र) शरीर। अंग = कुच, स्तन। आँगी = चोली। भट्ट = (वधू) स्त्रियों का पारस्परिक संबोधन।

२९ स्वेद = पसीना। भेद = रहस्य। व्रत० = आँखों ने भी आँसुओं का व्रत धारण कर लिया है, इनमें आँसू आ जाया करते हैं। तनकौ = थोड़ा भी। धौं = न जाने। द्वैक = दो-एक दिन से।

३१ उकसौहैं = उभड़ते हुए। उरज = स्तन। धनि = (धन्या) नायिका के लिये संबोधन। बिलोकियतु = देखी जाती है। पोर = पीड़ा।

३३ जराय-जरी = रत्नजटित। खरी = खड़ी होकर। बगारत = फैला रही है। सौंधे = सुगंधित। कंचुकी = चोली। कौंधे = लपलपाहट, चमक। दुंदुभी = नगाड़े। औंधे = उलटकर रखे हुए। भाजि० = मानो लड़कपन (यौवन से युद्ध में हार जाने के कारण) दोनों नगाड़ों को औंधा कर भाग गया है।

३४ वृषभान० = वृषभानु की पुत्री राधिका। दुरि = छिपकर। दुति = (द्युति) कांति। रसभीने = रसमय, सरस। मसि भीजना = मूँछों के स्थान में बालों की कालिमा का होने लगना।

३५ उचौनि० = ऊँचे स्तनों को जंघाओं से छिपाकर। तन तकि = शरीर को ध्यान से देखती हुई। अन्हाति = स्नान करती है।

३७ उलही = (उल्लसित)। दुलही = नायिका। हुलसै = (उल्लास) प्रसन्न हो रही थी। उज्यारी = चाँदनी, चमक। डरपी = डर गई। चकी = चकित हुई। चमकी = चंचल हो गई।

३८ गहत = पकड़ते हुए। ढिग = पास। नाह = (नाथ) पति।

३९ परतीत = (प्रतीति) विश्वास। बिबुध = पंडित।

४० पतियाना = विश्वास करना। आनन = मुख। रुचि = कांति, चमक। कमान = धनुष। कानन० = भौंह रूपी धनुष कानों में जाकर लग गया है, आँखें तिरछी करने लगी है। प्रीतमैं = पति को।

४१ दृग देना = ध्यान से देखना। छिनक = क्षणभर को भी। छबीले = नायक।

४२ लाज = लज्जा। मदन = काम (की इच्छा)।

४३ चालि = गौना होने पर। मृनाल = कमल-नाल। सूरति = शक्ल, स्वरूप। रति = कामदेव की स्त्री। संभु = महादेव (कुच)। मौज = तरंग, इच्छा। मनोभव = कामदेव। जुबान = जबान, जिह्वा।

४४ इकंत = (एकांत) भली भाँति। दुनारि = दो स्त्रियोंवाला। इँचे० = लज्जा और काम के कारण नायिका के नेत्र न तो नायक को भली भाँति देख ही सकते हैं और न देखने से रुक ही सकते हैं, उनकी अवस्था दो स्त्रियाँ रखनेवाले पति की तरह हो रही है।

४५ ललित लाज = सुंदर लज्जा (अत्यंत नहीं, थोड़ी)। केलि = क्रीड़ा। खानि = खान। मानि = मानो, करो।

४६ दंपति = पति-पत्नी। गुपति = गुप्त स्थान में। मेरे जानि =

देख ही नहीं सकतीं। बिरंचि = ब्रह्मा। अनंत = अगणित।

५६ भाल पै लाल गुलाल = मस्तक पर गुलाल (दूसरी नायिका के पैर का महावर) लगा है। गेरि = डालकर, पहनकर। गजरा = फूलों की भारी माला। अलबेलौ = विचित्र। गुलाब० = गले में नायिका के आलिंगन से मोती के हार के दाने नायक के वक्षस्थल पर उभड़ आए हैं, जहाँ दबाव के कारण पड़ी हुई ललाई भी है, इसीसे नायिका उन्हें गुलाब का गजरा कहती है। बनि बानिक = स्वरूप बनाकर। कै = कि। झोरिन = गुलाल से भरी हुई झोलियों को। झेलो = फेंको। रंग = प्रेम, रंग। बलबीर = बलराम के भाई, श्रीकृष्ण। मेलौ = डालो।

५७ रमन = पति। रावरे० = आपके पास, आप में।

५९ श्रमे = थके। बिकाने = बिके हुए। ठाये हौ = स्थित हो, शोभित हो। रंग-बोरे = रंग में डुबोकर। कुसुंभी = कुछ लाल रंग।

६० दाहक = जलानेवाले। नाहक = व्यर्थ। मुहि = मुझे। सुबस = (स्ववश) अधीन। परसो० = जाकर उसके पैर पकड़ो (मैं पैर छूने से न मानूँगी)।

६२ बलि = नायिका का संबोधन। रोस० = न चाहनेवाले पर क्रोध ही करके क्या किया ? आँसुन० = आँसुओं को बढ़ाकर, आँसुओं की झड़ी लगाकर।

६५ जगर-मगर = जगमगाहट। केलि-मंदिर = शयनागार। बगर-बगर = प्रत्येक कोठरी और दालान में। बगार्‍यौ = फैलाया। चटकदार = कांतिमान। अनुसार्‍यौ = आगे कर दिया, बढ़ा दिया। सैनन = इशारे करने में। पसार्‍यौ = फैलाया, दिखाया। बार = दफे, समय।

६६ दरस = देखते ही। अछेह = (अछेद्य) अत्यंत। तेह = रोष। गेह-पति = नायक।

६७ तरजन = बिगड़ना, डपटना, डाँटना। ताड़न = मारना।

६८ परोस = पड़ोस, पास के घर से (सौत के यहाँ से)। खरै-खरै = खरी-खोटी। धन = (धन्या) नायिका। धनी = पति, नायक। हनति = मारती है। हरै-हरै = धीरे-धीरे।

६९ तेह-तरेरे = क्रोध से चढ़े। अँगोट = छिपाकर।

७१ छवि० = छवि इतनी भरी है कि छलक रही है। पीक = पान की। अलक = लट। श्रम० = पसीना अधिक हो जाने से लटों के छोर से टपकने लगा। रूपखानि = अत्यंत रूपवती। अजाने = (अज्ञान) मानो कुछ जानती ही नहीं। परसत = छूते ही। मन-भावन = नायक। भावती = नायिका। ऐसी उपमानैं छ्वै = ऐसे उपमान को छू रही हैं, ऐसी उपमा देने योग्य हो गई हैं। अरबिंद = कमल (नायक के नेत्र)। चंद = नायिका का मुख। मान-कमनैत = मान रूपी धनुर्धर ने। रोदा = प्रत्यंचा, धनुष की डोर। कमानैं = धनुष। बिन० = नायिका की भौंहें। मानो ..है = मानों मान रूपी धनुर्धर ने चंद्रमा को कमलों के ऊपर चढ़ाई करने के लिये प्रेरित करके उसे विना प्रत्यंचा के दो धनुष दे दिए हैं (नायिका की भौंहें नायक के लाल नेत्रों को देखकर मान के कारण चढ़ गईं)।

७२ अनत० = रात में अन्यत्र (दूसरी नायिका से) रमण करनेवाले। सुरति = स्मरण से। गहकि = उमंगपूर्वक। गुनाह = दोष। छुवन = छाया भी छूने नहीं देती।

रह्यो० = जिन्हें देखकर जहाँ-तहाँ नहीं रहा जा सकता (पति आकृष्ट ही हो आता है)। पिछौहैं = पीछे की ओर से। बासर = दिन। बासर० = दिन बिता-बिताकर। मुदग० = आँखमिचौनी का खेल। ख्याल = खेल। हितै-हितै = प्रेम उत्पन्न करके। नैसुक = थोड़ी-सी। नवाइ० = गर्दन झुकाकर। औचक = अचानक। अचूक बिना चूके। चितै-चितै = देख-देखकर।

७५ जल-बिहार = जलक्रीड़ा । पिय-प्यारि = नायक और नायिका । सहेलि = सहेली, सखी । बुभकी = डुबकी । केलि = खेल ।

७६ परपुरुषरत = अन्य पुरुष में अनुरक्त । बाम = स्त्री । बहुरि = दूसरी ।

७७ और = अन्य । हिए राखि = हृदय में रखकर (विचारकर) । रस-रीति = रस की पद्धति ।

७८ लगि = तक । भारत = वृत्तांत, लंबी-चौड़ी कथा । भनैं = कहें । गुन० = गुण को अवगुण नहीं समझ लेते हैं । लौं = तक । सहेली = हे सखी ! । नीके कै = भली भाँति । श्याम रंग = काला रंग ; कृष्ण का प्रेम । हौं तौ० = मैंने श्रीकृष्ण से गुप्त प्रेम तो कर लिया परन्तु उसे तोड़ते नहीं बनता ।

७९ नायिका का पति उसे झुला रहा है । हिँडोरे = झूले पर । बसन सुरंग = सुंदर रंगीन वस्त्र । हरि = कृष्ण (उपपति) ।

८० सरस = रसीला । रस-लीन = प्रेमासक्त । परबीन = (प्रवीण) चतुर ।

८१ दुहूँ दिसि = दोनों ओर (मेरे और प्रियतम के पक्ष में) । दीपति (दीप्ति) चमक, रौनक । आनँद में अनुरागै = हर्षित हो जाय । दई = दैव । ब्यौंत = उपाय । देखे० = देखने पर बुरा चाहनेवाली स्त्रियों (चवाइनों) की आँखें जलें । अंक भरना = आलिंगन करना ।

८२ करतार = भगवान । सियराय = ठंढी पड़ जाय, दूर हो जाय । यार = उपपति । क्वाँरपन = लड़कपन (अविवाहित अवस्था) ।

८३ षट् = छः । बहुरि = दूसरी ।

८४ ललित = सुंदर । षष्ठई = छठी । अनुसयना = अनुशयाना ।

८५ लच्छन = लक्षणों के लिये नाम ही प्रमाण है, नाम से ही उनका लक्षण भी समझ लेना चाहिए ।

८७ आली = सखी । हौं = मैं । ही = थी । ता पै = उसपर । तनैनी पड़ना = क्रुद्ध होना । बनिता = स्त्री । ऊधमिनि = ऊधम मचाने-

बाली। घोरि डारी = घोलकर मेरे ऊपर उड़ेल दिया। बेसरि = नाक का एक गहना। बिलोरि डारी = बिगाड़ दी। रंग-रैनी = एक प्रकार की चूनरी। कंचुकी = चोली। कसनि = बंद। बिथोरि डारी = खोल दी।

८८ रैन = (रजनी) रात्रि। बिदारनि० = शरीर को विदीर्ण करनेवाली। जरी = जली हुई अर्थात् बुरी। बाय = (सं० वायु) हवा।

८९ उमंगनि = उत्साह से। छाजतीं = शोभित हैं। भजी = मैं भागी। भीजी= भीग गई। उलीचैं = डालते हैं। रपटे = फिसलकर गिर पड़े।

९० बिचल्यौ = फिसल गया। भरी० = इन्होंने आकर गोद में उठा लिया। कहा = क्या। तकना = देखना।

९१ दुहाई खाउँ = शपथ खाती हूँ। कन्हैया = श्रीकृष्ण। साँकरी = संकीर्ण, तंग। दाँउ = मौका। दधि-दान = दही का कर। अमनैक = ढीठ, अहंमन्य। बनमाली = श्रीकृष्ण। लख्यो = देखा है। मृग-अंक = चंद्रमा।

९२ हुरिहारिन = होली खेलनेवाले। घोष = शब्द (अश्लील गीत)।

९५ धनी = मालिक (पति)।

९६ पागे = अनुरक्त। रस = प्रेम। पाहुनी-सी = अर्थात् घर में रहती ही नहीं। अवसेरे रहैं = उसकी प्रतीक्षा ही करनी पड़ती है। दृग फेरे रहैं = मुझसे अप्रसन्न रहती हैं, मेरे घर नहीं आतीं। घनस्याम= काले बादल, श्रीकृष्ण।

९७ चीर = वस्त्र। अहीर के = अहीर के पुत्र। पीर = कष्ट।

९८ कनक-लता = सुवर्ण की लता, नायिका। श्रीफल = बेल, कुच। बिजन = निर्जन। बावरे = पागल। मधुप = भ्रमर, नायक।

१०० बंजुल = अशोक। मंजुल = सुंदर। कुरबिंद = माणिक। चबाई = चुगली करनेवाली। फिरि = मुँह फेरकर। पूतरी० = फिरंग देश के

लोगों की पुत्री के समान, अत्यंत गोरे रंगवाली। अनूतरी = बिना बोले, चुपचाप। मिलै = मिलाकर। अनिंद = सुंदर। आये = आए हुए। रस-मंदिर = आनंदगृह, केलिगृह। इंदीवर = नीला कमल। मुखारबिंद = मुखकमल।

१०१ धूँधुरित करि = धुंध-सा छाकर। मीड़न के मिस = मलने के बहाने से।

१०२ आन-रत = अन्य पुरुष में अनुरक्त। कला-निधान = कलाविद्।

१०३ छुटी = छूटी हुई, खुली हुई। उपटी = साट उभड़ी हुई। मकराकृत = मगर के आकार के। भुज-मूल = बाहुमूल, कंधे के निकट। का परी है = क्या पड़ा है, क्या करना है।

१०४ बीतबे ही = बीतनी थी, होनी थी। आँजना = नेत्रों में अंजन लगाना। किहि लाज = किस लिये। लुकंजन = (सं० लोपांजन) ऐसा अंजन जिसके लगा लेने से लगानेवाले को कोई देख नहीं पाता। हाल = बात। मति० = नेत्रों को लाल मत करो, क्रोध न करो। ख्याल के खंजन = खेल के खंजन, क्रीड़ा करनेवाले खंजन पक्षी के ऐसे। रेखित = चिह्नित, नखक्षत लगे हुए। कंचुकी = चोली। केंचुकी = पतला, महीन। कुच-कंजन = कमल (कली) के ऐसे कुचों को।

१०५ कंत = पति। जागती = जागते हुए। जात = व्यतीत होती है। द्यौस = (सं० दिवस) दिन।

१०७ रसबीजनि० = प्रेम का बीज बो चलती है। कनैखिन० = तिरछी नजरों से देखती है।

१०८ बिपिन = जंगल, निर्जन वन। बीथी = गली। प्रबल = अत्यधिक। कामकलित = कामयुक्त। बलि = बलिहारी। बाम = स्त्री।

११० बीथी = गली। ही = थी। रसाल = आम। ताल = ताड़। नेहिन० = प्रेमियों का प्रेम और अद्भुत ढंग की प्रीति देखने को मिली।

आनँद० = अद्वितीय रूपवाला आनंद। बाल = बाला, नायिका।

१११ प्रेम-बस = आसक्त। मति-मैन = (मैन = मदन) कामवासना में जिसकी बुद्धि रहे, मुदिता नायिका। रैन = रजनि, रात।

११२ बिघटन = नष्ट होना।

११३ परम० = अत्यंत निकटवाला पड़ोसी। अराति = आर्ति, दुःख। सूने० = अपने अत्यंत निकटवाले पड़ोसी के सूने घर में पड़ोसिन का आना सुनकर चतुर नायिका को ऐसा जान पड़ता है मानो विपत्ति ही आ गई हो, क्योंकि उस पड़ोसी से उसका प्रेम है और पड़ोसिन के आ जाने से उसे अब स्वछंदतापूर्वक पड़ोसी से मिलने में बाधाएँ पड़ेंगी। ताप = गर्मी, ज्वर। ताप० = ज्वर चढ़ आया। जऊ = यद्यपि। बिलानी० = गड़ी जा रही है।

११४ सौति० = सौत का संयोग नहीं है अर्थात् तेरे कोई सौत नहीं है। लागत = लगते ही, आते ही। नायिका के दुखी होने का कारण यह है कि बसंत के लगने से पतझड़ होगी। जिससे उसका वन का बना संकेतस्थल नष्ट हो जायगा।

११५ होनहार = आगे होनेवाला, भावी। अभाव = कमी।

११६ भावी संकेत के नष्ट होने का अनुमान करके नायिका दुखी है उसे सखी समझा रही है। चालौ = गौने की बात। करि = करो। तित = वहाँ। अलि = भ्रमर। चाइ = चाव, आनंद के साथ। थोक = समूह। लोने = लावण्यमय, सुंदर। झपि० = लटककर घेर रहे हैं।

११७ निघटत = अधिकता से घटता देखकर। धन = (धन्या) नायिका। सरोवर० = तालाब के जल में। नायिका गुलाबों के घटने से अपने भावी संकेतस्थल के नष्ट होने का अनुमान करके दुखी है, उसको सखी समझा रही है कि गुलाब के सुंदर पुष्प के अब न मिल सकने के कारण तू दुःख क्यों कर रही है?

११८ सुरत-सँकेत = विहार करने का संकेतस्थल । रमन-गमन = नायक का जाना और वहाँ से लौट आना ।

११९ पीतपटी = पीला वस्त्र, श्रीकृष्ण का पीतांबर । थकी = स्थकित हो गई । थहरानी = काँपने लगी । नीरज = कमल, आँख । छीरज = चंद्रमा, मुख । नीर-नदी० = कमल से नदी निकलकर क्षीणछवि होते हुए चंद्रमा पर फैल गई अर्थात् नायिका के नेत्रों से आँसू निकलकर उसके मलिन मुख पर गिरने लगे । गुंज की माला देखकर नायिका ने समझ लिया कि नायक संकेतस्थल से जाकर लौट आया है। नायक ने ही वन में गुंज की माला बनाई है ।

१२० कल = सुंदर । अतर = इत्र । बोय = (बू) खुशबू, सुगंध । भाभी = भौजाई । इत्र की सुगंध से नायिका ने समझ लिया कि नायक यहाँ आकर लौट गया है ।

१२१ और = अन्य पुरुष । रति = प्रेम । रमनि = रमण, नायिका । निकेत = घर ।

१२२ आरस = आलस्य । आरत = आर्त, उदास । सीस-पट = सिर पर का वस्त्र । गजब० = गजब ढाती है । धार = समूह । सुचि = अच्छी । बिथुरि = फैलकर । छिति = पृथ्वी, फरस । छरा = नारा जिससे स्त्रियाँ फुफुँदी बाँधती हैं या लहँगा कसती हैं । छिति० = जमीन पर नारे का छोर छहरा रहा है अर्थात् नारा फरस से छू जाता है । भोर = प्रातःकाल । केलि-मंदिर = क्रीड़ागृह । एक कर कंज = एक हाथ में कमल लिए हुए है ।

१२३ तन० = शरीर का वर्ण सुंदर है । सुबरन बसन = सुंदर रंग के वस्त्र हैं । सुबरन० = सुंदर वर्ण अर्थात् अक्षरवाली उक्ति कहने का उसके मन में उत्साह रहता है । धनि = (धन्या) नायिका । सुबरन-मै = सुवर्ण अर्थात् सोने से युक्त । सुबरन ही = सुंदर वरों अर्थात् नायकों की ही ।

१२५ लक्ष्य = उदाहरण ।

१२६ प्रतीति = विश्वास, निश्चय । दुखिताइ = दुःखिता ही ।

१२७ दूती नायक से रमण कर आई है । उससे और नायिका से प्रश्नोत्तर हो रहा है । स्वेद = पसीना । साँवरे = श्रीकृष्ण, नायक । दुहाई = कसम, शपथ । वा को० = उसका मन चुरा लाई है, उसके साथ रमण कर आई है ।

१२८ पीक-लीक = पान की पीक की रेखा । निरंजन = अंजन से रहित, नायक ने आँखों का चुंबन किया है इसी से । पुलक = रोमांच । बाद = विवाद । झूठबादिन = झूठ बोलनेवाली । धूतपन = धूर्तता । पापी = पातक करनेवाला अर्थात् नायक । बापी = बावड़ी । दूती के शरीर में जो चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं वे स्नान करने से भी हो सकते हैं ('पीक-लीक' को छोड़कर) और रमण करने से भी । नायिका व्यंग्य से कह रही है कि तू नायक के पास नहीं गई किसी बावड़ी में स्नान करने गई थी अर्थात् तूने नायक से रमण किया है, मैं यह बात समझ गई हूँ ।

१२९ आइ = है । अलि = सखी । बसाइ = वश ।

१३१ नायिका ने मान किया है इससे नायक व्यग्र है उसे सखी समझा रही है कि आप घबरायँ मत, अभी बादलों के छाते ही नायिका आप-से-आप मान छोड़ देगी । मनभावती = मन को भानेवाली, नायिका । सोर = शब्द, ध्वनि । घरीक = एक घड़ी में । हरुवै = धीरे से, चुपचाप । गरुवै = गले में ।

१३२ और = अन्य बातें । तौर = ढंग, हावभाव । अमोल = अमूल्य । सुहाग = सौभाग्य प्रकट करनेवाला शृंगार । तमोल = तांबूल ।

१३३ रस-धाम = रस की पद्धति जाननेवाले ।

१३५ नायिका का भाई उसे विदा कराने के लिये आया है, नायिका

सखी से पति के प्रेम की चर्चा करती हुई उससे बिदा करवा देने की प्रार्थना कर रही है। माई = माता। भाभी = भौजाई। बीरन = भाई। राखति० = मुझसे प्रेम करती है। माइके = नैहर। यह उदाहरण स्वकीया नायिका का है।

१३६ तरके = तड़के, सवेरे। गोरस = दूध। पग धारो = बाहर गई। धौं = न जाने। हित = लिये। खोर = गली। काँकरी = कंकड़ी। लौट = पलटकर। छिन = क्षण। चाखनहारो = चखनेवाला। यह उदाहरण परकीया का है।

१३७ अनखाति = चिड़चिड़ाती है। बिरह-बरी = विरह अर्थात् दुःख से जलती हुई। बिललाति = व्यग्र हो रही है। नायिका अपने प्रेम का गर्व करके अपनी सौत की दुर्दशा सखी को सुना रही है।

१३८ नायिका चंद्रमुखी कहने से क्रुद्ध होती है क्योंकि वह कलंकी चंद्र की उपमा अपने मुख के लिये उचित नहीं समझती। इसी पर किसी सखी की उक्ति है। भटू = (वधू)।

१३९ नायिका अपनी सखी से कह रही है। नेत्रों को मृग और मछली के समान कहने से उसे क्रोध हुआ तो वह उठकर पड़ोस के घर में चली गई। इससे उसके क्रोध की शांति हो गई और कहनेवालों से भी बिगाड़ नहीं हुआ। रस रखना = प्रेम बनाए रखना।

१४३ उदित उदीपन तें = उद्दीपनों के उदित होने से।

१४४ सिख = सलाह, राय। छपाकर = क्षपा (रात्रि) करनेवाला (विशेषण)। छपाकर = चंद्रमा। बेदन = (वेदना) पीड़ा। मोचना = गिराना। उलही = (उल्लसित) बढ़ी हुई। दुरावै = छिपाती है।

१४५ बालम = (वल्लभ) प्रिय। ह्याँ ही = यहाँ पर। च्वै-सी० = चू सी गई (कृश हो गई)। छबि-छाँहीं = (उसकी) छवि की छाया।

धीर समीर = मंद वायु । बूझि हू = पूछने पर भी ।

१४६ भरति उसासनि = ऊँची साँसें लेती है । दृग भरति = आँखों में आँसू भरती है ।

१४७ अरबिंद = कमल । इंदु = चंद्रमा (चंद्रोदय होने पर) । हवाले = वश में । कसाले = कष्ट में । बनसी = वह कँटिया जिसमें आटा लगाकर मछली फँसाई जाती है । दुमाले = फंदे में । गो = गया । मनोज = काम । पाले = अधीनता में ।

१४८ ऊबत हौ = व्याकुल होते हो । डूबत हौ = हताश होते हो । डगत हौ = अस्थिर हो जाते हो । रितै = (प्रीति की रीति) घटाकर, तोड़कर । उससि = उभड़कर । इतै = यहाँ । चले = बहने लगे । आगम लौं = आने तक । बैरी = हे शत्रु । बंध० = वेदना के बंधनों को तोड़कर चलते बने । चलाचल = चलने में, जाते समय ।

१४९ रमन = (रमण) प्रिय । आधियै = आधी ही । आहि = आह ।

१५० परबीन = प्रवीण । सुधि आनबी = सुध करते रहना । ज्वाल = ज्वाला । मानबी = मानना, समझ लेना । ऊब = व्याकुलता । निपट० = अत्यंत ऊँची साँस लेता हुआ पवन, तेजी से बहता पवन (जैसा होली के समय 'फगुनहटा' बहता है) । गातन = अंगों का ।

१५१ मेह = (मेघ) जल । अछेह = (अछेद्य) निरंतर । भभूरनि = बगूलों के रूप में ।

१५२ बिहाल = विह्वल । ऊतरु० = किसी बहाने से । मैन = (मदन) काम । घनेरी = बहुत । पिराति है = पीड़ा करती है । पाँसुरी = पँसुली ।

१५३ काइ = काया, शरीर । जाइ = दिन बीतते हैं । नायिका अपनी ननद के पति पर आसक्त है, जो परदेश में है ।

१५४ बीर = हे सखी । अबीर = गुलाल (अबीर का दुःख होली खेलने-

वाले मोहन के न रहने से है)। अभीर = अहीर, ग्वाला। मीत = मित्र। आठएँ = आठवें। पाखैं = पक्ष। आठएँ पाखैं = चार महीने पर भी। सीत = जाड़ा।

१५५ अंकुस० = जिसके पैर में अंकुश और हाथ में कमल का चिह्न होता है उसे लक्ष्मी बहुत मिलती है और लोग उसके वश में रहते हैं। यार = प्रेमी।

१५६ अनत = अन्यत्र। अवदात = स्वच्छ।

१५७ झपकौहैं = उनींदे। झुकि = रुष्ट होकर। झहराइ हू = (प्रेम से) झकझोरने पर भी। अंक लगना = आलिंगन करना।

१५८ गुन = डोर।

१५९ ख्याल करि कै = क्रीड़ा करके। पौंचा = पहुँचा, कलाई। हरेईं-हरे = धीरे-धीरे। नायिका नायक के अन्यत्र रमण से इतनी दुखी हुई कि उसके शरीर में शैथिल्य से कृशता आ गई और गहने ढीले पड़कर खिसक गए।

१६१ अमी के = अमृतमय। पीके हैं = पीक के दाग लगाए हैं। नायिका ने नायक के नेत्रों का चुंबन किया है इससे नेत्रों में पान की ललाई लग गई है और नायक ने ओठों से उसके नेत्रों का चुंबन लिया है इससे ओठों में अंजन लग गया है।

१६२ बलम = (वल्लभ) पति। नायक भूलकर दूसरी स्त्री का नाम ले लेता है, उसी पर नायिका की उक्ति है।

१६३ ठगौरी डालना = मुग्ध करके वश में कर लेना। अरज = विनय।

१६४ कै अमनैकी = मनमानी करके, हठ करके। बजि कै = डंके की चोट, खुल्लमखुल्ला। घनै की = घन की सी, बादल की सी (चातक बादल से प्रेम करता है और बादल उसपर पत्थर बरसाता है)।

१६५ रुख = चेहरा। रँग = तमाशा। रुख राखैं = प्रतीक्षा करती हैं।

मरजी = चित्तवृत्ति । मजा = आनंद । मजाखैं = (मजाक) विनोद की बातें ।

१६६ गोकुल = नगर (यहाँ नगर के लोग) । हेत = लिये ।

१६७ गोसपेंच = कान का एक गहना । पेंच = गहना । बारि० = न्यौछावर कर आए । पगरी० = पगड़ी में लगा आए हो (नायिका के मनाने में नायक उसके पैरों पड़ा है) । वे गुन० = वे गुणों से युक्त, अत्यंत मन लुभानेवाले । बेगुन० = बिना डोरवाले (आलिंगन से नायिका की माला के दाने नायक के वक्षस्थल पर उभड़ आए हैं, उनमें दानों के चिह्न तो हैं, पर डोर नहीं है) । सार = गोटी । पासा० = चौपड़ खेलकर । मनुहारिन = नायिका । मनुहारि = मनावन करके । पासा...आए हौ = हे हरि आप किस मन-भावती के साथ चौपड़ खेलकर उससे जीनकर और उसका मनावन करके अपना मन हारकर आ रहे हैं ।

१६९ साह = (साधु) महाजन ।

१७० बारी = (बाल) छोटी, नवजात । उपचार = दवा । कितीकौ = कितने ही । भेद = रहस्य । ज्यान = हानि (हानिकारक) ।

१७१ अतन = शरीरहीन, कामदेव ।

१७२ नायिका स्वयं पश्चात्ताप कर रही है । बितान = चँदोवा । गहब = बड़ा । गिलमैं = (फा० गिलीम) मुलायम । जगाज्योति = जगमगा देनेवाला प्रकाश । अखिल = समग्र । मैन = (मदन) कामदेव । बिलमैं = देर तक ठहरते हैं । न लीन्ही हिल-मिल मैं = आदरपूर्वक उनका स्वागत नहीं किया । अन्वय—हाय मैं प्रभा की झिलमिल मैं मिल रही हौं ।

१७३ कहर = क्लेश (वियोग-जन्य) ।

१७४ हे = थे । बजमारे = वज्र का मारा, भीषण (गुमान का विशेषण) ।

सों = से (इसके कारण) । हाय के = आह के । दवारे = दावाग्नि । मैन = मदन । ऐन = ठीक, एकदम । उसास अनुसारे सों = उसासें छोड़ने से । हान = हानि । गुन = (गुण) भलाई ।

१७५ घमंड = बादलों का घिराव । पावस = (प्रावृट्) वर्षा (नायिका के विरह-जन्य ताप से सूखा पड़ने लगा है) ।

१७६ पियूष = अमृत । मुख० = उपपति कर लेने पर भी कलह करके क्लेश सह रही हूँ । उपहास० = परपुरुष से प्रेम करने की बदनामी का भय (कसक) केवल उसासें भरते रहने से तो दूर न होगा । हूक = पीड़ा ।

१७७ नायिका अपने मान को संबोधन करके कह रही है । सभीत गो = भयभीत होकर चले गए । मुद्दई = शत्रु ।

१७८ सरसाने = आप्लावित, युक्त । सुधारस-साने = मीठे । अनतैं = अन्यत्र । बखाने = कहने से क्या लाभ । पारि = गिराकर, मारकर ।

१७९ दाहिये = जला जा रहा है (भाववाच्य) अर्थात् जल रही हूँ । छैल = नायक । छगूनी = छोटी अँगुली, कानी अँगुली । छला = मुँदरी, अँगूठी ।

१८१ लौं = तक । मजेज = मिजाज । सुंदर० = अच्छे मिजाज से, भली भाँति । तन० = शरीर जल रहा है (विरह के कारण) । तमीपति = चंद्रमा । तेज पर = प्रकाश की तीक्ष्णता से । लौं = समान । लेज = (रज्जु) रस्सी । लचकि० = जिस प्रकार रस्सी द्वारा खिंचने पर लता लचक जाती है, उसी प्रकार भारे लज्जा के वह नतमस्तक हो गई । बीरी = पान की गिलौरियाँ । पीरी = पीतिमा, पीलापन । सीरी परी = ठंढी पड़ी हुई ।

१८२ गूजरी = (गुर्जरी) नायिका । ऊजरी = उजड़ी हुई, अस्तव्यस्त (नायक आकर लौट गया है) । ऊजरी = उज्ज्वल । तेज = तीक्ष्णता ।

१८३ पूर = धारा । पूरि रह्यो = भर आया है । गहब = गंभीर ।

१८४ सजन = (स्वजन) पति । बिहूनी = विहीन । अधपक्यो = अधपका अर्थात् कुछ पीलापन लिए हुए ।

१८५ लंक = कमर । मखतूल = रेशम । ताग = डोरा । दाग = पीड़ा । राग = प्रेम । बिराग = वैराग्य । कहर = आफत । गाज = (सं० गर्ज) बिजली । अरगजा = चंदनादि का लेप ।

१८६ रँग-रँग-भरी = नायक लेटकर चला गया है इसी से ।

१८७ गंजन = हृदय तोड़नेवाला । सुगुंज = सुंदर गूँज (पक्षियों का कलरव) । दोष-मनि = अत्यंत दोषमय । गुंजन० = गुंजाओं से भरा होकर (नायक आकर लौट गया है, गुंजा की माला के दाने इधर-उधर डाल गया है) । खोज = पता । ख्याल = खेल, क्रीड़ा । घालन लग्यो = चोट करने लगा । सूखन = (शोषण) सुखाने लगा । सुबिंब = कुँदरू । मोंजन = मरोड़ने । अंक = शरीर । बजि कै = डंके की चोट, खुल्लमखुल्ला ।

१८९ माल = माला (नायक से मिलनेवाली) । सटकि गई = निकल भागी । सहेट = संकेत-स्थल । दलनि = समूहों द्वारा । छैल = नायक । छंद = कपट ।

१९० मैन-मूरति = मदनमूर्ति, नायक ।

१९२ अनागम-कारन = न आने का कारण । मोचै = छोड़ती है, गिराती है । मोचै० = संकोच के कारण (पति के दिए हुए) हार को देखती रह जाती है, उसे उतारकर (क्लेश के कारण) फेंक नहीं देती । निबाहि = निर्वाह करके (क्योंकि चैत्र की चाँदनी उसे दुःख दे रही है) । अवलोचै = व्यथा दूर करे । लोचै = अभिलाषा करती है ।

१९३ अटा = अटारी, छत । कित = कहाँ ।

१९४ सिरानी = बीती । गुनि = सोचकर, विचारकर । हहरानी = व्यथित हो गई । सूल = कंटक । फर = अर्थात् शय्या पर ।

१९६ बास = वासना । और बास तैं = और किसी भाव से, अन्य कारण से । गास = फँसावड़ा । प्यौ = प्रिय, नायक । सो = वह । तलास तैं = हे सखी, तू इसकी खोज कर । जवास = काँटेदार झाड़ी, गर्मी रोकने के लिये जिसकी टट्टी लगाई जाती है । रास = समूह । सासतैं = विपत्तियाँ । न राखत हुलास तैं = इनसे तू उल्लास को क्यों नहीं बचाती । न लाउ० = तू खासकर खस मत लगा । आसतैं = (आहिस्तः) धीरे-धीरे । न जाउ उठि बास तैं = घर से उठकर चली क्यों नहीं जाती ।

१९८ का गुन = क्या बात । बार = देर । बीर = हे सखी । बेदरद = निर्दय (नायक) । उलूक = चिनगारी । लौं = से । लाइ आउ = लगा आ, जला आ ।

१९९ नायिका संकेतस्थल में कदंब से पूछ रही है ।

२०० भावतो = नायक । तान-तरंग = संगीत में, गाने में । मनि-हार = मणिमाला ।

२०३ कलपित केरै हैं = केले के वृक्ष लगाए हैं । खासे = अत्यधिक । खुस-बोइ = सुगंध । हीरन के = हीरों के बने । उजेरै हैं = जला रही हैं । चोखी = तीव्र । चँगेरे = फूल रखने की डाली ।

२०४ सैन = शयन (समय के) । लाइ = लगाकर ।

२०५ लगालगी लगनि मैं = प्रेम के आधिक्य से । लमकि उठै = उमंग से भर जाती है । चिराग = दीपक । झिलि = अघाकर । झेलि = प्रविष्ट होकर । झरहरी = रंध्रयुक्त, जिसमें छेद हों । झाप = चिक या परदा । झमकि उठै = जेवरों का झमाझम शब्द कर देती है । दर = स्थान । दरीखाना = अर्थात् कमरा । दुरि = लुक-छिपकर । दामिनी = बिजली ।

२०६ पीठ दै = नजर बचाकर।

२०७ चहचही = सुंदर। चहल = कीचड़। चंद्रक = चमकदार। चुनी = चुन्नी, रत्न। आब चढ़ी है = चमचमा रहे हैं। फराकत = (फा० फराख़) लंबा-चौड़ा। फरसबंद = ऊँची समतल भूमि। फाब = छवि, शोभा। महताब = चाँदनी, छटा। गुल = गुलगुली, मुलायम। गादी = गद्दी। गिलमैं = कालीन। गजक = नाश्ता। गिंदुक = (सं० गेंडुक) तकिया। गुले० = गुलाब के फूल की।

२०९ सोसनी = (फा० सौसन) ललाई लिए हुए नीला। दुकूल = साड़ी। रोसनी = ज्योति। घूमनि = चक्कर, घिराव। तंग = कसी हुई। अँगिया = चोली। तनी = कसी है। तनिन तनाइ = बंदों से खींचकर बाँधी हुई। छपा = रात्रि। खरी = खड़ी है। छरी = अप्सरा।

२११ उसीर = खस। जीरे = जियरा, हृदय। पुरैन के पात = कमल के पत्ते। जनु पीरे = गर्मी से मानो पीले पड़ गए हैं। गजगौहर = गजमुक्ता। चाह = इच्छा। सिवार = (शैवाल)। सीरे = ठंढे, शीतल।

२१२ अमोलिक = अमूल्य। सुरुख = अच्छी। हार = सीप की माला इसलिये पहन ली कि नायक से मोती की माला माँगूगी।

२१४ नायक का वचन नायिका से। नौल = (नवल) नई आई हुई। औझकि उझकि = एकाएक निकलकर। झझकनि = हिचक, संकोच (कुछ खीझ लिए हुए)। सुरझि = सुलझकर, निकलकर। बेस = सुंदर। गहनि = पकड़ना।

२१५ नायिका का वचन नायक से। सूधी सहौ = सिधाई से रहने को मिलेगा (तुम्हारे ऐसा टेढ़ा न होगा)। लला = प्रिय।

२१६ सतरैबो = रुष्ट होना। उमहौ = उमंगित रहो। नायक का वचन नायिका से है।

२१७ भट्ट = (वधू) नायिका का संबोधन । लट्टू = मुग्ध ।

२१८ सखी का वचन नायिका से । भूल० = भूलभुलैया की कला ही पकड़ ली है, सबको भूलते ही जा रहे हैं । मेली = डाली ('नहीं')।

२१६ सुबस = (स्ववश) अपने अधीन ।

२२० रचि रही = ललाई छा गई है (पान की)। सुगंध = सुगंध फैलाकर । खौर = लेप । सुहाग = सौभाग्य (का चिह्न) । सवेरौ = शीघ्र । गेरौ = डालो (क्योंकि आलिंगन में बाधक होगा)। नायिका का वचन नायक से ।

२२१ अंगराग = शरीर में लगाने के सुगंधित द्रव्य आदि । बरजी न = मना नहीं किया । प्रबीन = हे प्रवीण (नायक)।

२२२ उझकि = उचककर । झमकि = झमाझम शब्द करके । झाँकी = निहारा । बिसरि...तमासा की = खेल का ख्याल ही न रहा, जो खेल खेल रहे थे उसे छोड़ बैठे । चहूँवा = चारों ओर । तमोर = (तांबूल)। तरौना = कान में पहनने का एक जेवर । बासा = (वास = स्थान) उसकी उक्त स्थान में रहने की मुद्रा । नासा = नासिका ।

२२३ लटि = शिथिल होकर । भाई-सी = खराद पर घुमाकर बनाई हुई, सुडौल । भभरि गो = उलझकर गिर गया । अरि गो = अड़ गया । हेर्यो चाह्यो = आगे का रास्ता तलाश करना चाहा । हरें-हरें = धीरे-धीरे ।

२२४ तरुन-तन = युवक । चबाई = बदनामी करनेवाला ।

२२५ छाक = शराब पीने के बाद खाई जानेवाली वस्तु । अँगिया = चोली । ही = हृदय, वक्षस्थल । रंग-हिँडोरे = झूले के खेल के आनंद में । मिचकी = पेंग । मचकौ = झूमकर पेंग मत बढ़ाओ । करिहाँ = कमर ।

२२६ धरनीधर = श्रीकृष्ण । 'और' की बात से यह गणिका लक्षित कराई गई है । सखी का वचन नायिका से है ।

२२७ बोलि पठावै = बुलवाए ।

२२८ किंकिनी = करधनी । बाजनी = बजनेवाली । पायल = पायजेब । पाँय तें नाई = पैर से निकालकर फेंक दी । पात = पत्ता । खरके = खड़कने से । भाई = सुंदर । बैस = (वयस्) अवस्था । हरें-हरें = धीरे-धीरे ।

२२९ नायिका का संदेश दूती नायक से कह रही है । नवबेलि-सी = नई लता के समान । उलहि = उल्लसित होकर, उमंगपूर्वक ।

२३० हूले = आँकुस से चोट करने पर भी । आँदू = हाथियों के पैर में डाला जानेवाला सिक्कड़ । गथि = मजबूती के साथ । सोसनी = देखो छंद सं० २१० । ठमका = ठमककर, रुक-रुककर । ठुमकी = ठसक के साथ । ठमकी = नाज-नखरेवाली ।

२३१ सखी और नायिका का प्रश्नोत्तर है । भावते = नायक । लानै = लिये ।

२३३ घूमके = घिराव । तोम = समूह । तुलत = उपमा के योग्य होते जाते हैं (हीरे तारे-से जान पड़ते हैं) । हैकल = घोड़ा आदि के पैर में पहनाया जानेवाला जेवर । खोर = गली । खुसबोइ = सुगंध ।

२३४ दू पर = दोनों में । सुर = स्वर (स, रि, ग, म, प, ध, नि) । अगमन = पहले ही ।

२३५ दूती का वचन नायिका से । अथाई = बैठक, जमावड़ा । छीन० = रात मत बिता । बदन० = मुख छिपाकर । छपाकर = चंद्रमा । अथै गयो = अस्त हो गया ।

२३८ सही साँझ तें = संध्या के आरंभ होते ही ।

२३९ छल-सी = कपट की तरह (गुपचुप) । कानन = उपवन । मखतूल = रेशम ।

२४० सारँग = वस्त्राभूषण । सारँगनयनि = मृगनयनी । सारँग = (नायक के द्वारा बजाया) बाजा ।

२४१ आँगी = चोली । पाँमरी = (सं० प्रावार) दुपट्टा । खुही = सिर पर कोना बनाकर ओढ़ी जानेवाली घोघी ।

२४३ कचरति = कुचलती हुई । लाग = लगाव ।

२४४ मजीठ = लाल रंग । माठ = मटका, गागर ।

२४५ अवरेख = जानना, समझना । चटक = तेज ।

२४६ सफरी = मछली । हरजै = हानि । उपचार = दवा । मरजै = रोग, बीमारी । मथुरै = मथुरा को । बरजै = मना करे ।

२४८ खेरौ = खेड़ा, गाँव । गेरौ = गिराया । गुलाब के द्वारा बसंत का आगमन सूचित करके नायक को रोकना चाहती है ।

२४९ बलम = प्रिय । मूरि = जड़ी ।

२५० बराइबे कौं = रोकने के लिये । तीते पर = तीव्र लगने पर, वियोग के दुःख की असह्यता से । आँसुओं से स्नान करके वर्षा का आगमन बताया, वर्षा में विदेश-गमन निषिद्ध है । बालम = (वल्लभ) प्रिय । रीते पर = घर के (तुम्हारे चले जाने से) खाली हो जाने पर, घर छोड़ने पर ।

२५१ नायिका सखी से कह रही है । कैलिया = कोयल । उलहे = लहलहाते ।

२५२ असन = भोजन ।

२५३ झार = ज्वाला, लपट । झरसी = झुलसी हुई । नाखै = फेंकती है । मालती की माला मार्ग में डालकर नायक को वर्षा का आगमन सूचित कर रही है ।

२५४ चाह = खबर । सुकंत = स्वकंत, अपने पति को ।

२५५ धनी = महाजन, नायक । अरि जैहै = अड़ जायगी ।

२५६ फबत = शोभित (फाग का विशेषण) । फजिहत = परेशानी ।

जाँचि = माँगकर । धमार = फाग के गीत ।

२५८ बास-बास = फूलों से सुगंधित करके । गूँदि = गूथकर । गज-गौहर = गजमुक्ता । खसबीजन = खस के पंखे । पौनखाने = गवाक्ष, झरोखे आदि ।

२५९ दुरागमन = गौना । बानि = वाणी, बात ।

२६० दुराइ० = छिप रही है ।

२६१ सखी का बचन सखी से ।

२६२ हीरा-हार = हीरों का समूह । तुंग = ऊँचे । तोरन = नकली फाटक, यहाँ बंदनवार । झलाझल = चमक-दमकवाले । पौरि = फाटक ।

२६३ मुद = प्रसन्नतापूर्वक । आन = कसम ।

२६४ प्रान० = पड़ोसिन (नायिका) के तो प्राण-से पड़ने आ रहे हैं, उनके आने से उसके विरह से निकलते हुए प्राण बच जायँगे ।

२६५ रमनि = रमणी, नायिका ।

२६६ रसाला = सरस ।

२७० मुहै = मुझे । परिचारिका = दासी । मगन० = आनंदित रहो ।

२७३ मान = प्रमाण (तक) । घानै = चोट । ताजी = नवीन । राजी० = अनेक उठने से रोएँ शोभित हुए, रोमांच हो आया । सौहैं = = सामने । सौहैं सुनि = शपथें सुनकर । कमान = धनुष ।

२७४ अवाँगी = नीची कर ली । हाँगी भरना = हामी भरना । नायक नायिका को कुरुख देखकर 'मौनं सर्वार्थसाधनम्' का ध्यान कर चुप रह गया । नायिका का मान भी काफूर हो गया ।

२७६ सरोष = रुष्ट । कोष = खजाना ।

२७७ नायक आप बीती कह रहा है । उरझाइ = उलझाकर, बहकाकर ।

२८० ही = (हृद्) हृदय । कदंब = समूह । रतनाकर = समुद्र । आगर = निपुण ।

२८३ औनो = घर। कौनो = कोई। सलौनो = (सलावण्य) सुंदर।

२८४ चालि आई = नैहर से विदा होकर पतिगृह में आई।

२८७ पा = (पद) पैर।

२८९ हिलोरे = तरंग, उमंग। हेम = सोना। निहोरा = अनुरोध, आग्रह।

२९२ मधु = शराब।

२९३ गजब = बेढब। गुनाही = अपराधी।

२९४ सहित = हितकारी। घट = शरीर।

२९५ कंद = कलाकंद, बरफी। दाख = (द्राक्षा) मुनक्का। सिरै = बढ़कर। मधु = शहद। निसीठी = नीरस।

२९६ उरसिज = कुच, स्तन।

२९७ बारवधू = वेश्या। अलज = निर्लज्ज। अभीत = निर्भय।

२९८ कंचुकी = चोली। घट = शरीर। बटा = गेंद। दू = दो। विधि = ब्रह्मा। विधि = विधान। लोट = त्रिबली। पटा करिबे को = मार गिराने के लिये। कटा = काट, मार।

२९९ आईं = खराद पर चढ़ाकर। गलगाजत = गरजते हुए। छाक = शराब के बाद का नाश्ता। छलहाई = छल करनेवाली। छिक = चैन, आराम। रस = आनंद।

३०० जाहिर = प्रकट, प्रत्यक्ष। घरहाई = चुगली करनेवाली।

३०१ छरा = इजारबंद। अदा = लटक। बारि - बिलासिनी ती = वेश्या। अखरा = अक्षर (वाणी)।

३०२ सीकरनि = सी-सी करना। बिसाति = बकत।

३०५ उदित = प्रचलित।

३०६ बाल = नायिका। बिहाल = विह्वल, बेचैन। बगारै = प्रसार, प्रभाव।

३०७ जुराफा = अफरीका का एक जंगली पशु जो अपने जोड़े के साथ रहता है। रूसना = कोप करना। सयान = चतुरता।

३०८ सुमन = पुष्प, सुंदर मन। सेली = माला। निरखि = देखो।

३०९ दाऊ = बलदेव । पौरि = दरवाजा । बखरी = घर ।

३१२ दह = (ह्रद) सरोवर ।

३१४ सलोने = सुंदर । सबुज = अर्थात् कुछ-कुछ काले । झिल्ली = झींगुर । महत = महत्त्व । दई = दैव ।

३१५ वैस ही = उसी प्रकार । भेंटबी = भेटूँगा ।

३१६ यह उपपति का उदाहरण है । गेहपति = स्वामी ।

३१७ यह वैशिक नायक है । पारस = पारस मिलने से लोहे से सोना बनाकर वेश्या को दे सकेगा । मुरकि = लौटकर ।

३१८ नायकाभास = नायक का आभास-मात्र है, वास्तविक नायक नहीं ।

३१९ पाता = पत्र । पसारि० = प्रेम के व्यवहार करके । रतिराता = प्रेम से अनुरक्त (चित्त) । विभाव = उद्दीपक चेष्टाएँ । अनुभ = अश्रु । बीसबिसे = निश्चय ।

३२२ लच्छ = (लक्ष्य) उदाहरण ।

३२५ बैसी = बैठी हुई । उनै-सी = उमड़ी हुई, छाई हुई ।

३२६ कानि = मर्यादा ।

३२७ अडोल = निश्चल ।

३२८ चख = नेत्र ।

३२९ सीबी = सीत्कार । नीबी = फुँफुदी ।

३३० खोर = गली ।

३३६ सचिव = मंत्री, सलाहकार, साथी । ।

३३७ मोचै = दूर करे ।

३३८ धरकि = धुकधुकी की धड़कन के साथ । भूमित० = छवि शोभित होकर पृथ्वी के धरातल को छा रही है । गवि कै = दूबकर, सन-कर । क्षरिप = परदा ।

३४१ नाखी = फेंक दी । कोक = कामशास्त्र के एक आचार्य । कारिका = सूत्र । रसाल = आम । मंजरी = बौर ।

३४२ पछीत = पीछे की ओर ।

३४४ उतन = उस ओर, उधर । कारो चोर = काले कृष्ण ।

३४६ झोरि = परस्पर एक-दूसरे को झोंका देकर । झमाइ = एकत्र होकर । इकहाऊ = एकाएक । नैसुक = कुछ-कुछ । हर = हल । ऊसर = (ऊसर) खेत ।

३४७ हलकाय = हिलाकर । ख्याल = तमाशा ।

३५१ छवा = एड़ी । डाँकत = पच्चीकारी करने से ।

३५२ अनी = नोक । अनियारे = तेज, चोखे ।

३५३ लग = प्रेम । झेल = देर । सर कौ = समता के लिये । सर-सेल = बाण और भाला । घलाघल = चोट ।

३५६ भरभरात = विह्वल होती है । घनघरात = गरजने से ।

३५७ द्रुत चाल = तेज चाल से । सर = समता । मैनहिं = कामदेव ने ही । हरैं = धीरे से ।

३५८ नाइ = नीचे करके ।

३६१ इहाँई० = यहीं तुम्हारे ब्याह का चलन हो जाय (मथुरा में नहीं) यह कहकर श्रीकृष्ण की बड़ाई करती हैं ।

३६४ सटा = फैलाव । लटा = लट । घटा = शोभा, ज्योति-प्रदर्शन । घालि = मारकर । कटा = काट, मार ।

३७१ तरनि० = यमुना । तारापति = चंद्रमा । ताती = गर्म, तप्त (विरह से) । काम० = कामदेव कत्ल करनेवाला होगा और कुंज कटार होगी । अबाती = बिना वायु की, भीतर-ही-भीतर जलनेवाली । नेह = तेल और प्रेम ।

३७३ तासन = एक प्रकार का जरदोजी कपड़ा । गिलमैं = गद्दे । मख-तूल = रेशम । झरपैं = परदे । झुमाऊ = झूमनेवाली । रंगद्वारी = रंगमहल के द्वार पर । सँवारी = सजाई हुई ।

३७४ बिजन = निर्जन । खोरि = गली ।

३७७ बाम = स्त्री। हमाम = गर्म पानी का हौज।

३७८ केलि = खेल, क्रीड़ा। कलित = सुंदर। किलकंत = किलकता है। पिक = कोयल। पलास = टेसू। पगंत है = पगा है, छाया है। दिगंत = दिशाओं का छोर। बीथी = गली। बगरो = छाया है।

३७९ डौर = ढंग। झौंर = गुच्छा। अवाज = ध्वनि।

३८० लरजत = हिलते हैं। लुंज = टूटे हुए। बिसासी = विश्वासघाती। भुंज = भूजते हैं।

३८१ लूकैं = लुएँ, गर्म हवा। ऊकना = जलाना। हूकना = पीड़ा से व्याकुल होना।

३८२ छाम = महीन। जलाक = गर्म हवा। बेस = बढ़िया। बाटी = बाटिका। सीतल-सु-पाटी = चटाई। गजक = नाश्ता।

३८३ मल्लिका = चमेली। मुहीम = चढ़ाई। दुंदै = शोर करते हैं।

३८४ चरजना = भुलावा देना। लरजना = हिलना। तरजना = ताड़न करना अर्थात् दुःख देना।

३८५ झरसत = झुलसता है। मवासो = किला, घर। अवासो = (आवास) घर।

३८६ तालन = ताड़ वृक्ष। ताल = सर। माल = माला। छान = छानी, छवाव। छता = छत्र।

३८७ सनाको = शब्द की तुमुलध्वनि।

३८८ छाकियतु है = छकते हैं, संतुष्ट होते हैं। बाकियतु है = कहे जाते हैं। तरनि = सूर्य। तमोल = (तांबूल) पान।

३८९ गिलमैं = गद्दा। गुनीजन = संगीत आदि गानेवाले। चिराग = दीप। गजक = शराब के बाद खाया जानेवाला नाश्ता। गिजा = खाद्य पदार्थ। कसाला = कष्ट।

३९२ छरा = इजारबंद । निशा = निश्चय । रंग = उमंग । झारि = एकदम ।

३९७ रागना = अनुराग करना ।

४०० अटा = अटाला, ढेर । हटा = हाट, बाजार । पटा = पटाव, सौदा । घलाघल = मार । कटा = कत्ल ।

४०१ बेस = बढ़िया । मुकता० = मुक्तारूपी अक्षत (चावल) से ।

४०३ अँग० = अंग में सिवार लिपट गया है । झार = एकदम । बारि-बिहार = जलस्नान ।

४०७ अध-अखरान = आधे अक्षरों से, टूटी-फूटी वाणी से ।

४०९ पारि = लिटाकर । तंत = (तंत्र) घात । थिरकी = हिल उठी । बात = हवा । जलजात = कमल ।

४११ मोहित = प्रेम से मुग्ध होने से ।

४१२ अनभावतो = अनचाहा । हहरात = घबराता है । बेसर = नथ ।

४१५ भेद = रहस्य । बेदन = पीड़ा । ही = थी । बीर = स्त्रियों का संबोधन ।

४१६ झख = मछली ।

४१७ जीव-गन = लोग, मनुष्य । गोय = छिपाकर ।

४१८ उताल = तेज । मूठि = मारण-प्रयोग ।

४१९ अँगोट = ओट, आड़ ।

४२१ छिए = छूने से ।

४२८ कसकै = पीड़ा होने का भाव दिखलाते हैं । कर मसकै = हाथ से मलती है ।

४२९ पैठ = बाजार ।

४३[illegible] मयंक = (मृगांक) चंद्र । सुत० = पृथ्वी का टेढ़ा पुत्र, मंगल (लाल रंग) ।

४३९ गिरैया = पगहा । छावत है = शोभित होते हैं ।

४४० किंकिनी = करधनी।

४४१ झझकाइ = झिझककर। झुकी = रुष्ट हुई।

४४५ मजीठ = लाल रंग। माठ = घड़ा।

४४६ दराज = बड़े, विशाल।

४४८ उछाहीं = उत्साह से।

४५० ईठ = (इष्ट) मित्र, प्रिय।

४५१ चमू = सेना। मूके = फेकने से। ढूके = घात में।

४५२ छूत = (छुवत) छूती है।

४५७ दृगंचल = आँख की कोर। कुच-कुंभ = कुंभ (घड़े) के ऐसे कुच। उचारे = उच्चारण। ही = हृदय। तुंग = बड़े-बड़े।

४६० अभीर = (आभीर) अहीर।

४६३ तमाल = अर्थात् तमाल के कुंज में मिलना। अंचल० = पर्वतों के संधिस्थल में मालती फूलने के समय मिलूँगी।

४६४ निधिबन = एक बन जो ब्रज में है। हीर० = अर्थात् रात में चंद्रोदय के समय मिलूँगी।

४६५ सिताब = शीघ्र।

४६६ दरियाव = समुद्र।

४६८ बेद = लक्षण के ग्रंथ।

४७३ अवगाह्यो = स्नान किया। बिसाह्यो = मोल लिया।

४७६ लीक = रेखा। लंक = कमर। लुनाई = सुंदरता (पतलापन)।

४७९ सुगैया = चोली। बिसासी = विश्वासघाती। अनैसो = बुरा। चवैया = चुगली करनेवाली। पारि गो = भुला गया।

४८२ उसासी = उच्छ्वास। दहा कियो = जलाया। कंकालिनि = अर्थात् जिसका शरीर भी किसी काम का नहीं था। कहवत = कथन।

४८५ बारुनी = शराब। रसाके = सरस। अभीत = निर्भय।

४८८ मुकताहल = (मुक्ताफल) मोती । इंद्रबधू = लाल रंग का छोटा बरसाती कीड़ा।

४८९ दलकन = कंप ।

४९१ जेर = दबे हुए । सेर = शान से ।

४९२ महंत = महात्मा । बिधि = ब्रह्मा । लीक = रेखा ।

४९३ बनचर = जंगल में रहनेवाले, स्थलचर । बन-चर = जलचर ।

४९५ झपैं = मुँदते हैं (नींद से) । बहाली = धोखा ।

४९६ बलित = युक्त ।

४९७ अपोच = उत्तम ।

५०१ निगम = वेद । आगम = शास्त्र ।

५०२ बादहि = व्यर्थ ही । बाद = विवाद । बदी कै = बुराई करके । मति = मत, नहीं । बंज = व्यापार । बिषै-बिष = विषय रूप जहर । रसनाम = आनंददायक नाम ।

५०३ डीठि = दृष्टि, विचार से ।

५०५ झिलत = चलता हुआ । मरोर = उमंग । तब सों = उस समय से । तकैयन = ताकनेवाले । मेह = वर्षा, झड़ी । मेह = मेघ । दब सों = दबकर । बेन = बंशी । उनमद = मदमस्त । रब = बोली ।

५०६ कंज-मृनाल = कमलदंड । कलानिधि = चंद्रमा और कलाविद् (नायक) । मित्र = सूर्य और यार (नायक) ।

५०८ बलाइ = आफत । दीन मिलाइ क्यों = क्यों मिला दिया, क्यों दोनों की भेंट हुई । चंग = चर्चा (बदनामी की) । उमही = उमड़ी ।

५०९ सटपटाति = व्याकुल है । मेह = वर्षा (आँसुओं की) ।

५११ भाषिबो॰ = कुछ कहना चाहती है । रुमंच = रोमांच । तनकौ = थोड़ी भी ।

५१२ बेष = रूप, आकार । झिखि = रुखाई से । झिरकि = झिड़की देकर ।

५१७ अमरख = रोष ।

५१८ नेक हू = थोड़ा भी । उमंड करि = उत्साहित होकर । बिचलु न = विचलित न हो । कचरिहौं = कुचलूँगा ।

५१९ अरथ = लिये ।

५२१ बानी० = सरस्वती की सुंदर वाणी । तिल-उत्तमा = तिलोत्तमा नामक अप्सरा । चंद कीरनै = चंद्र की किरणें । मखतूल = काला रेशम । गनगौरि = पार्वती ।

५२२ गुल = फूल । गालिब = दावादार, बढ़कर ।

५२४ कुसुंभ = पीला रंग कुछ ललाई लिए । बासर = दिन । आभरन = आभूषण । हिलिन = सखियों को । हितै = विनय करके । चाँदनी = प्रकाश । चौसर = विस्तार । चौक = दाँत का चौका । चाँदनी = प्रकाश ।

५२५ हौंस = अभिलाषा । द्यौस = दिन ।

५२७ माती = मतवाली । पैग = पैर । तुंग = ऊँची । बिघाती = घातक । छरा = इजारबंद । सरबोर भई = भीग गई ।

५३० हरहार = महादेव का हार, सर्प ।

५३२ प्रसेद = प्रस्वेद, पसीना ।

५३३ ह्यौ = हृदय । अन्हैयतु है = स्नान करता है । रस = आनंद, आह्लाद ।

५३४ आँगी = चोली । उर = कुच ।

५३६ स्यान = चतुराई की बातें । सालै = पीड़ा करती है । लै = (लाज को) लेकर क्या करेगी । घालै = (घूँघट) करे ।

५३९ सिंधु-तनया = लक्ष्मी । अमंद = उज्ज्वल, दिव्य । सुधाई = (सुधा ही) अमृत ही । गिरीस = महादेव । तारन० = चंद्रमा तारापति कहलाता है । कुल० = कृष्ण चंद्रवंशी थे, इसलिये चंद्रमा उनके कुल का आदिपुरुष (कारण) हुआ । हाल = तुरत के, थोड़े

द्विनों के। ज्वाल = (ज्वाला) अग्नि । जुआल = (ज्वाला लपट । द्विजराज = ब्राह्मण, चंद्रमा का विशेषण ।

५४० पारत = डालता है । अपति = अप्रतिष्ठा ।

५४१ चहचही = अति सुंदर । चुभकी = तन्मयता । चौंक = झिझक । लहलही = सुंदर, मनोहर । लंक = कमर । मजा = आनंद । मरगजी = मलिन । आँगी = चोली । अंक = चिह्न । सरसार = (फा॰ सरशार) निमग्न । समोई = डुबोई हुई । छरी = छड़ी । परी है = लेटी है । परी = अप्सरा । परजंक = पलंग ।

५४२ निरमूल = बेखबर । उथरे = छोटे-छोटे । फूल रह्यो = प्रसन्न हो गया, खिल गया ।

५४४ ह्याँ = यहाँ । इलाज॰ = दवा कर सकूँगी । चेतत = होश में आते-आते । जुलमिन = भीषण । ताप = गर्मी, ज्वर ।

५४५ अजब = विचित्र । अजार = व्याधि । छाम = दुर्बल ।

५४७ छलहाई = छल । आड़्यो = छेंका, रोका । अपने॰ = अपनी शक्ति भर । पै = निश्चय । नाँई = (न्याय) तरह ।

५४८ पैज = (प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञा का व्रत । सिताब = (फा॰ शिताब) शीघ्र । सहगौन = (सहगमन) पति के मरने पर सती होना । रती = प्रीति । मो = मेरी । मति = बुद्धि । पयान = (प्रयाण) । पुरंदर = इंद्र ।

५४९ हने = काटे । नजरि = भेट । सीस = (शीर्ष) ऊपर ।

५५० सरसात = बढ़ते है, उत्पन्न होते हैं ।

५५१ अनियारे = तीक्ष्ण । हायल = शिथिल । धन = (धन्या) नायिका ।

५५२ बीठि = कठिनता से । इंगुरो = लालिमा । नेह-अँटकी = प्रेममग्न । औघट = दुर्गम, दुर्घट (स्थान) ।

५५५ भभरि = घबड़ाकर ।

५५० कलाम = कथन, विनय । खोरि = गली ।

५५८ प्रीतमैं = प्रियतम से।

५५९ छीनी = क्षीण, दुर्बल। धौं = न जाने।

५६३ ख्वै रही = काट रही है (लज्जा और कार्य को त्यागे दे रही है)। ग्वै रही = उदित हो रही है। छकी = मस्त। उझकी = चक-पकाई हुई।

५६४ हलैं न = हिलते नहीं। अटपटे = अजीब, विचित्र।

५६६ जाहिर की = प्रकट किया, बताया। झंझरी = किवाड़ों के बीच का रंध्र। सिरकी = चिक या टट्टी की तीलियाँ। थिरकी-थिरकी = नाचती हुई।

५६७ चकरी = एक खिलौना जिसमें डोर बाँधकर फिराते हैं, चकई।

५६८ गनगौरि = चैत्र शुक्ल तृतीया के दिन गणेश और गौरी का पूजन होता है, उसे बुँदेलखंड में 'गनगौर' कहते हैं। फैल = (फा॰ फेल) कार्य। हितै रहै = अनुरोध करते फिरते हैं। गौरी = स्त्रियाँ (पूजन में आई हुई)। गनगौरि = पार्वती।

५७० अगवारे = घर के बाहर आगे की ओर। तौ = था। न जान्यो गयो = समझ में नहीं आया। ख्याल = ध्यान। बींध्यो = लिपट गया।

५७१ मलिंद = भ्रमर। तम = अंधकार।

५७३ सिरे = श्रेष्ठ, प्रधान।

५७७ चखन = आँखों में। पगन लगी = लिप्त होने लगी। लगन = प्रीति।

५७८ आतप = धूप, घाम। आय = है।

५८० चंद्रकला = राधा की सखी का नाम। बिसाखा = राधा की सखी। समाजि कै = लगाकर। ललिता = एक सखी।

५८१ बिबसन = विवशता। मृदुकाय = कोमल अंगवाले।

५८३ बालबधू = पतोहू। बच = वचन।

५८४ खसम = पति। त्रिनयन = महादेव।

५८६ नद्दत = गरजते हुए। बिहद = अत्यधिक। दल-बद्दल = सेना का समूह। चहै = आवश्यकता हो तो। चक्र = दिशा। पलैया = पालनेवाला। पैजपन = प्रतिज्ञा का बाना। परि भाषत = निश्चित रूप से कहता हूँ। रीतौ = खाली, जनशून्य। अभीतौ = निर्भय। इंद्रजीतौं = इंद्रजीत (मेघनाद) को भी।

५८७ बक्ष = वक्षस्थल, छाती। अक्ष = अक्षयकुमार (रावण का पुत्र)।

५८९ बंका = (वक्र) विकट। चोप = चाव। बाहिबे = चलाने। धूरधान = धूल की राशि।

५९२ भीत = दीवार। छीका = सिकहर।

५९५ मादा = मेद, चरबी। मज्जा = नली के भीतर का गूदा। सलीती = झोली। खराब० = बुरी दशावाली।

५९८ इंदु = चंद्रमा (मुख)। अरबिंद = कमल (नेत्र)। कीरबधू = सुग्गी (नासिका)। मोती = (दाँत)। तम = अंधकार (केश)। रबि० = सूर्य की गर्मी (प्रकाश) से वह अंधकार दबता नहीं और खुल जाता है (केश और अधिक चमकने लगते हैं)।

५९९ सुरराव = इंद्र। अगस्त्य-प्रभाव = वे तो समुद्र को सोख गए थे, (इन्होंने तो केवल पुल ही बाँधा है)।

६०१ अकारथ = व्यर्थ। बैस = (वयस्) उम्र।

६०२ बाद = विवाद। दुरास = दुराशा। कायो = शरीर।

६०३ आन = मर्यादा की रक्षा की चिंता।

६१४ अटक = रोक, बाधा।

६१५ बिपुलित = अत्यधिक। दृगंचल = पलक। उरगपुर = सर्पलोक, पाताल।

६१८ छंद = कपट। डौर = ढंग। बनि कै = भली भाँति, पूरे-पूरे।

६१९ ईछन = कटाक्षपात। पुरैन = कमल के पत्ते। मीच = मृत्यु।

६२० घलाघल = मार। ठोकर = चोट। चेटक = जादू।

६२१ पीकन लगे = पी-पी शब्द करने लगे ।

६२४ कीरतिकिसोरी = राधिका ।

६२५ बीर = हे सखी ।

६२६ धमार = होली के गीत । फगुआ देना = फाग खेलकर भेंट देना ।

६२७ लाइ = आग ।

६३० साधा = साध, इच्छा ।

६३१ होस = अभिलाष ।

६३२ सौंहनि० = भली भाँति (अत्यधिक) कसमें खाने पर ।

६३३ राह० = (इसका मन रखना चाहो तो) दूसरे के मार्ग में पैर मत रखना । आन-बान० = कसमें खाकर अन्य का बखान मत करना ।

६३४ आनि = अन्य ।

६३५ भरें = पहनाने से । बख्याई = बड़ी कठिनाई से ।

६३६ नीकी = भली । अनैसी = बुरी । हायलै = घायल (से) । पायलै = पायजेब को । पाइ लगि = पैरों तक । बेनी पाइ = चोटी को पाकर (देखकर) । पाय लगि = पैरों पड़कर । पाइ लागियतु है = पाकर हृदय से लगाते हैं । सखी का वचन नायिका से है ।

६३८ निदान = अंत में ।

६३९ सूत = सूत्र से, आधार पर ।

६४० पावन = पवित्र, अच्छा, भला । उसीर = खस । तावन = तपानेवाला । मदार के गीत = शाह मदार के संबंध के गीत । 'गंगास्नान के लिये जाते समय शाह मदार के गीत गाने लगना' लोकोक्ति है ।

६४२ भाँती = हर तरह से । आपने० = अपने भाग्य में लिखी हुई । उलहै = निकले ।

६४३ चाप = धनुष । ताय = तपाकर । तारापति = चंद्रमा । तापतौ =

जलाता । थापतौ = स्थापित करता ।

६५२ झपकि = शीघ्रता से । झलौ = समूह । छलौ = प्रेम की मात्रा । ठगौरी = मोहिनी । मेला = भीड़ (समूह) । मझार = बीच हेल्या = खेल । छाह छ्वै = पास आकर । छराछोर = इजार बंद का छोर ।

६५३ चोरिन = चुपके-चुपके । ही = थी । हाल = अभी । फेर = जादू । कतरे = टुकड़े । करिहाँ की = कमरवाली ।

६५६ खुशाल = अर्थात् सुगंधित । खुसबोही सों = सुगंध से । जोग जोही = देखने योग्य । सों = वह ।

६५९ आक = (अर्क) मदार । आँकना = बतलाना । परिरंभन = आलिंगन । छकना = मस्त होना, भाव में मग्न होना । बाकिबो० = बकती रहती है ।

६६० उमहत हैं = उल्लसित हैं । उरूजे = उलझे । रसे हैं = प्रविष्ट हैं ।

६६२ ओरे-लौं = ओले की तरह । अचाक = अचानक । घोरे = घोले । सीरे = शीतल । उपचार = दवा । घनसार = कपूर । चुरना = पकना, जलना ।

६६७ प्रमथ = महादेव के गण । प्रमथपति = प्रमथों के नायक ।

६६८ दिगंबर = नग्न (महादेव) । पाहुनी = आमंत्रित स्त्रियाँ । उछाह = (उत्साह) उत्सव । उमाह = उमंग ।

६६९ हलधर = बलदेवजी ।

६७२ कै = कि । धनी = स्वामी । वाहिए = फेंक दीजिए, रखिए ।

६७४ रोवत = रोवे लगे ।

६७६ अधर-दसन = ओठ चबाना ।

६७८ बारि = जल (समुद्र का) । बल-अनंत = अत्यंत बलशाली । त्रिकूट = लंका की तीन चोटियाँ (सुबेला, लंका, निकुंभिला) । अच्छ = अक्षयकुमार । निरच्छ = रक्षाहीन, निस्सहाय (अकेला) ।

रुच्छ = रुक्ष (क्रुद्ध) । उचारौं = कहता हूँ । तिच्छ = (तीक्ष्ण) प्रचंड । गंत = (गनत) गिनता हूँ ।

६७९ चब्ब० = ओठों को चबाते हुए । गब्ब = गर्व ग्रहण करके ।

६८१ बिय = (द्वितीय) दूसरा ।

६८२ मोर = मोड़ना ।

६८४ कुंदन = सोना ।

६८५ अत्र = (अस्त्र) हथियार, यहाँ कवच । संगर = युद्ध । लंगर = ढीठ । अतंका = (आतंक) दबदबा । फलात = उछलते हुए । फाल = डग । फलंका = (फलक) आकाश । तड़ाक = शीघ्रता से । तड़ातड़ = तारियों की ध्वनि । तमंका = जोश ।

६८६ ललाई = लालिमा (प्रताप की) । परिघ = एक हथियार, लोहाँगी । रौदा = प्रत्यंचा । न मात = नहीं अँटता ।

६९० परे = पैरों पर गिरे । चायन = चाव से । सुभायन = स्वभाव से । बाहनै = सवारी (गरुड़) को । उबाहनै० = नंगे पैरों ही ।

६९४ बकसि दये = दान में दे दिए । वितुंड = हाथी । षोड़स = दान सोलह प्रकार के होते हैं—भूमि, आसन, जल, वस्त्र, दीप, अन्न, पान, छत्र, सुगंधि, फूलमाला, फल, शय्या, पादुका, गो, सोना और चाँदी । डीठि = दृष्टि ।

६९५ हेम = सोना । हलके = हाथियों का झुंड । वित्तर = बाँटना । गंज-गज = हाथियों का समूह । बकस = देनेवाला । गोइ रही = रखवाली कर रही हैं ।

६९९ धान = धान्य । आगम = शास्त्र । मंदर = पर्वत । पुरंदर = इंद्र ।

७०२ गोपादि = गोपन (आकारगोपन = अवहित्था) आदि ।

७०३ झिलिम = कवच । झला = समूह । झप्यो = ढका हुआ । तेगवाही = तलवार चलानेवाले । सिलाही = शस्त्रधारी, सैनिक । अकबक = अंडबंड । गनीम = शत्रु । इलाही = हे ईश्वर ।

७०४ जलन = तपन। जलाक = लू। जाल = समूह। जमा = खजाना, पूँजी। जोम = जोश। जिलाह = (अ० जल्लाद) अत्याचारी। रंग-अवगाह = उमंग को थहानेवाले। दावादार = दावा करनेवाले। दिवाकर = सूर्य। दलेल = सजा। दिग दाहे = दिशाओं को जलानेवाले। कला = प्रवीणता। कुल्लि = संपूर्ण। कहर = आफत। कुंत = भाला।

७०५ धुंधुरित = (धुंध से) छाया हुआ। धूम = धुआँ। पग्ग = पाग, पगड़ी। मग्ग = मार्ग। तंतडान = (तड़िल्वान) बादल का सा गर्जन।

७०६ मृगराय = (मृगराज) सिंह।

७१० अंत्र = आँत। गिलत = निगलती है। अरुन = लाल। उरुग्गिनि = सर्पिणी। हरबरात = शीघ्रता करती है, हड़बड़ी करती है। पलपंगत = मांस का ढेर। रक्कत = रक्त। चकचकाइ = चकित होकर।

७१५ अयान = (अज्ञान)। हौं = हूँ। हौं = मैं। कान० = सबको सुनाऊँगा। पंचमुख = अर्थात् महादेव होकर।

७१६ माली = समूह। उताली = शीघ्रता। खुसाली = प्रसन्नता। चाली = छली। काली = कालीय नाग।

७१७ फिरत = फिरता है।

७१८ अरु पानी = और आब।

७२४ बितान = चँदोवा। दियो = दीपक। भख = भक्ष्य, भोजन।

७२५ बिरक्कत = विरक्त।